प्रकाशक
साहित्य-संस्थान
राजस्थान विश्व विद्यापीठ,
उदयपुर

मूल्य २।।।)

मुद्रक
विद्यापीठ प्रेस, उदयपुर

वक्तव्य

साहित्य-संस्थान राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर विगत २१ वर्षों उदयपुर और राजस्थान में साहित्यिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक कलात्मक सामग्री एवं शिलालेखों की शोध खोज, संग्रह, संपादन और प्रकाशन कार्य करता आ रहा है। विशेषकर साहित्य-संस्थान ने राजस्थान में यत्र तत्र बिखरे हुए प्राचीन साहित्य, लोक-साहित्य, इतिहास पुरातत्व और कला विषयक वस्तुओं को प्राप्त करने के लिये निरन्तर प्रयत्न किया है। *परिणाम स्वरूप लगभग ४० महत्वपूर्ण और उपयोगी ग्रन्थों* का प्रकाशन होचुका है। साहित्य-संस्थान के अन्तर्गत निम्न लिखित विभाग गतिशील हैं—

(१) प्राचीन साहित्य-विभाग,
(२) लोक साहित्य-विभाग,
(३) इतिहास पुरातत्व-विभाग,
(४) अनुसन्धान पुस्तकालय एवं अध्ययन गृह,
(५) संग्रहालय-विभाग,
(६) राजस्थानी प्राचीन साहित्य-विभाग,
(७) पृथ्वीराज रासो एवं राणा रासो-सम्पादन संशोधन विभाग
(८) भील साहित्य-संग्रह-विभाग,
(९) नव साहित्य-सृजन-विभाग,
(१०) संस्थानीय मुख पत्रिका-'शोध पत्रिका' संपादन विभाग,

(११) संस्कृत-'राज प्रशस्ति' ऐतिहासिक महाकाव्य सम्पादन विभाग,
(१२) प्राचीन कला प्रदर्शनी विभाग,

इनके अतिरिक्त 'सामान्य विभाग' के अन्तर्गत अन्यान्य कई प्रवृत्तियाँ चलती रहती हैं. उनमें मुख्य २ ये हैं:—

(१) महाकवि सूर्यमल आसन' भाषण माला
(२) म० म० डा० गौरीशंकर 'ओझा आसन ,,
(३) उपन्यास सम्राट् 'प्रेमचंद आसन' ,,
(४) निबन्ध-प्रतियोगिताएँ
(५) भाषण प्रति योगिताएँ,
(६) कवि सम्मेलन
(७) साहित्यकारों एवं महाकवियों के जयन्ति-समारोह ।

इस प्रकार साहित्य-संस्थान, राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर अपने सीमित और अत्यल्प साधनों से राजस्थानी साहित्य, संस्कृति और इतिहास के क्षेत्रों में विभिन्न विघ्न बाधाओं के होते हुए भी निरन्तर प्रगतिक कार्य कर रहा है। राजस्थान के गौरव-गरिमा की महिमामयी झाँकी अतीत के पृष्ठों में अंकित है; पर आवश्यकता है. उसके पृष्ठों को खोलने की। साहित्य-संस्थान नम्रता के साथ इसी ओर अग्रसर है और प्रस्तुत पुस्तक साहित्य-संस्थान के तत्वावधान में तैयार करवाई गई है।

साहित्य-संस्थान के संग्राहकों ने अनेक स्थानों में घूम घूम और ढूँढ ढूँढ कर २०००० के लगभग छन्दों का और प्राचीन हस्त लिखित अनेक उपयोगी ग्रंथों का भी संग्रह किया है। इनमें विविध प्रकार के प्राचीन छन्द सुरक्षित हैं। विभिन्न प्रकार की ऐतिहासिक घटनाओं एवं व्यक्तियों आदि का वर्णन मिलता है। ये विभिन्न प्रकार के गीत और छन्द लाखों की संख्या में राजस्थान के नगरों, कस्बों एव गाँवों में बिखरे

ड़े हुए हैं। इनके प्रकाशन से एक ओर साहित्यकारों को राजस्थानी
हित्य का परिचय मिल सकेगा, तो दूसरी ओर इतिहास सम्बन्धी
पर भी प्रकाश पड़ेगा। साहित्य-संस्थान राजस्थान में पहली
है, जो शोध-खोज के क्षेत्र में नियमित काम करती चली
रही है।

इस प्रकार के संग्रह अब तक कई निकाले जासकते थे; किन्तु साधन
सुविधाओं के अभाव में साहित्य-संस्थान विवश था। इस वर्ष प्राचीन
राजस्थानी साहित्य और लोक साहित्य के प्रकाशनार्थ भारत सरकार के
शिक्षा-विकास सचिवालय ने साहित्य-संस्थान के लिये कृपा कर ५७,०००)
सत्तावन हजार रुपयों की योजना स्वीकार की है। इसी योजना के
अन्तर्गत प्रस्तुत पुस्तक का भी प्रकाशन कार्य सम्पन्न हो सका है। ऐसे २
उपयोगी कार्यों को प्रकाश में लाने के कारण हमारी सरकार के गौरव में
ही वृद्धि हुई है।

इस सहायता को दिलाने में राजस्थान के मुख्य मन्त्री माननीय
श्री मोहनलालजी सुखाड़िया और उनके शिक्षा सचिवालय के अधिका-
रियों का पूरा २ योग रहा है। इसके लिये हम उनके प्रति अपनी हार्दिक
कृतज्ञता प्रकट करते हैं। साथ ही भारत सरकार के उपशिक्षा सलाहकार
डा० डी० पी० शुक्ला, डा० मान तथा श्री सोहनसिंह एम. ए. (लन्दन)
के भी अत्यन्त आभारी हैं, जिन्होंने सहायता की रकम शीघ्र और
समय पर दिलवा दी। सच तो यह है कि उक्त महानुभावों की प्रेरणा
और सहायता से ही यह रकम मिल सकी है और संस्थान अपने ग्रन्थों
का प्रकाशन करवा सका है। भारत सरकार के राज्यशिक्षा मन्त्री डा०
कालूलालजी श्रीमाली के प्रति किन शब्दों में कृतज्ञता प्रकट की जाय? यह
तो उन्हीं का अपना कार्य है। उनके सुझाव और उनकी प्रेरणा से संस्थान
के प्रत्येक कार्य में निरन्तर विकास और विस्तार होता रहा है और

भविष्य में भी होता ही रहेगा। इसी आशा और विश्वास के साथ हम उनका हृदय से आभार मानते हैं।

हमें विश्वास है कि हमारी भारत सरकार एवं राजस्थान सरकार इसी प्रकार साहित्य-संस्थान की प्रवृत्तियों के लिये सहायता एवं सहयोग देकर हमारे उत्साह को बढ़ाती रहेंगी, जिससे इस महान् देश की सांस्कृतिक प्राणभूत प्रवृत्तियों के द्वारा राष्ट्रीय चिर स्थायी कार्य किये जासकें।

हम उन सब सज्जनों और विद्वानों के भी आभारी हैं, जिन्होंने इस कार्य के संकलन, सम्पादन और संशोधन में सहयोग एवं सहायता दी है।

विनीत	विनीत
मोहनलाल व्यास शास्त्री	**भगवतीलाल भट्ट**
मंत्री	अध्यक्ष
साहित्य-संस्थान	साहित्य-संस्थान

सम्पादकीय—

प्रस्तुत भाग भी साहित्य की अपेक्षा इतिहास के लिये बड़ा ही महत्व का है। इसमें सर्व प्रथम शार्दूल प्रमार का वर्णन हुआ है। प्रसंग वश उसके पूर्वज प्रख्यात वीर कर्मचन्द एवं जगमल का नामोल्लेख कर उसी के पूर्वज पंचायन का चित्तौड़ पर बहादुरशाह द्वारा होने वाले युद्ध में मारा जाना तथा मालदेव के सम्बन्ध में लिखा है कि महाराणा उदयसिंह से वह प्रमार वीर रुष्ट हो बादशाह अकबर के पास चला गया। वहाँ उसे अच्छी जागीरी एवं सम्मान प्राप्त हुआ, किन्तु जब अकबर ने चित्तौड़ पर आक्रमण करना चाहा; तब वह अपने वीरोचित धर्म का विचार कर बादशाह का साथ छोड़ महाराणा के पास चला आया और महाराणा से पूर्व से भी अच्छी जागीर प्राप्त कर युद्धार्थ आमा ले चित्तौड़ आकर शाही सेना से भिड़ता हुआ मारा गया। वर्णन से सम्बन्धित हुमायूं द्वारा बहादुर शाह का नष्ट होना और तुलनात्मक रूप में सम्राट पृथ्वीराज चहुवान के प्रसिद्ध वीर हाहुलो का भी इसमें उल्लेख हुआ है।

मालदेव के सुलतानसिंह, सांगा, शार्दूल, कलियान, बलभद्र एवं आशकरण नामक छः पुत्र लिखे गये, जिनमें से सांगा और शार्दूल महाराणा को छोड़ बादशाह के पास चले गये, बादशाह ने उन्हें बदनोर [मेवाड़] की सनद जागीर में दी, अतः वे सकुटुम्ब आकर मसूदे में रहने लगे। बदनोर पर पहले से ही राठोड़ वीर रहते थे! इसलिये प्रमारों ने बदनोर पर चढ़ाई की। राठोड़ों ने दूत रूप में

हूल जाति के क्षत्रिय "मांडा" को प्रमारों के पास भेजा, किन्तु वाद विवाद करने पर वह शार्दूल प्रमार द्वारा मार दिया गया। तब राठोड़ों के मुखिया भोपतसिंह आशकर्ण एवं उमसिंह थे। उन्होंने शार्दूल प्रमार के साथ युद्ध छेड़ दिया, उनके पक्ष में जोधपुरके राठोड़ एवं मेड़ता के मेड़तिया तथा दूदावत राठोड़ भी थे। इस वर्णन में राठोड़ को कंधारी एवं कन्नोज-राज वंश लिखे गये हैं। कवि ने ऐसा लिख कर यह स्पष्ट किया है कि "पृथ्वीराज रासौ" में जिस राठोड़ वीर वालुका राय को कंधार पति लिखा, यह वंश भी उसी कंधार एवं कन्नोज राजवंश से सम्बन्धित है। अतः राठोड़ों का प्रमारों के साथ घमासान युद्ध हुआ। अंत में राठोड़ों पर शार्दूल प्रमार [१] की विजय हुई।

महाराणा जगत्सिंह [प्रथम] की सेनाका डूँगरपुर पर आक्रमण[२] करने में अखैराज मंत्री को युद्ध-विजय का श्रेय दिया गया है, जो

---

१ शार्दूल प्रमार का उल्लेख वीर विनोद भाग २ पृ० २८७ में हुआ है। यह महाराणा अमरसिंह (प्रथम) के छोटे पुत्र राजा भीमसिंह का साला एवं प्रमार कर्मचन्द श्री नगर (अजमेर) वंशज था।

२ महाराणा जगतसिंह (प्रथम) की सेना का आक्रमण मंत्री अखैराज कावड़िया की प्रमुखता में डूंगरपुर पर हुआ जिसका उल्लेख राज प्रशस्ति महाकाव्य में इस प्रकार हुआ है।

जगत्सिंहाज्ञया मंत्री अखेराजो बलान्वितः
सडूँगरपुरं प्राप्तः पुञ्जनामाथ रावलः ॥२८॥
पलायितः पातितं तन्मंदनस्य गवाक्षकम् ।
लुंठनं डूँगरपुरे कृतं छोवैरलं ततः ॥२९॥

राज प्रशस्ति सर्ग ५

भामाशाह का पौत्र और जीवराज का पुत्र एवं कर्मचन्द का दौहित्र था। महाराणा अमर (प्रथम) ने भी उसके कुटुम्ब का सम्मान किया और महाराणा कर्ण ने उस अखैराज को अपना प्रधान बनाया। महाराणा कर्ण ने खुर्रम को आगरा (दिल्ली) के तख्त पर बिठाने में सहयोग दिया। महाराणा कर्ण ने केवल ८ वर्ष २८ दिन ही शासन किया। अंतिम समय वह चित्तौड़ गया और वहाँ से आने पर उदयपुर में उसका वि० सं० १६८४ माघ शु० १२ बुधवार को स्वर्गवास हो गया। उसके बाद महाराणा जगतसिंह सिंहासनारूढ़ हुए। उस समय डूँगरपुर का रावल पूंजा (पुञ्जराज) परम्परा के अनुसार नजराना नहीं लाया। इसी प्रश्न पर मेवाड़ी सेना डूँगरपुर पर चढ़ाई करने के लिये भेजी गई। मंत्री अखैराज उसका मुखिया बनाया गया। उस सेना में कितने ही क्षत्रिय थे, जिनमें प्रमुख कर्मसेन का पुत्र रामसिंह [भिनायवाला]

गोपालदास का पुत्र किशनदास [घाणेराव का] रावत रामसिंह (सलूंबर) कन्हा झाला (गोगुन्दा वालों का पूर्वज), श्यामसिंह का पुत्र माधवसिंह, दूदा का वंशज ईश्वर दास (देवगढ़ वालों का पूर्वज), राठौड़ सांवलदास (बदनोर), वीर नरहर दास का पुत्र जसवंतसिंह, (बानसी वालों का पूर्वज), इन्द्र भान प्रमार (बिजोलिया), मानसिंह (कानोड़ वालों का पूर्वज), जसवन्तसिंह, कछवाहा किशनसिंह का पुत्र, भाटी ऊदा (उदोतसिंह), राठौड़ सुन्दरदास आदि थे। मेवाड़ी सेना

इस में चढ़ाई का संवत् स्पष्ट नहीं है, लेकिन वर्णन से अनुमान होता है कि महाराणा (जगतसिंह) के वि० सं० १६८४ में सिंहासनारूढ होते ही यह चढ़ाई प्रारम्भ हुई होगी। देखिये— डूँगरपुर राज्य का इतिहास पृ० १०८ ले० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा।

प्रयाण कर सोम नदी पर पहुँची। तब एक मात्र चाहुवानों का मुखिया वीर सूजा (सूरजमल) रावल पूँजा की ओर से युद्धार्थ तत्पर हुआ। लालसिंह का पुत्र वीरभाण सूजा के पक्ष में हो भिड़ने को तय्यार हो गया। उस (सूजा) से पूर्व उसी के पक्ष का योद्धा पृथ्वीराज मारा गया है। यह सूचना पाते ही वीर सूजा शीघ्र ही बढ़ा। सर्व प्रथम रायत मानसिंह से उसकी भिड़ंत हुई और मानसिंह ने उसके सीने में कटार भोंक दी, फिर भी सूजा ने पृथ्वी पर गिरते २ दामोदर नामक व्यक्ति को धराशायी कर दिया। रावल पूंजा भी नोली नामक स्थान पर डट गया, किन्तु अखयराज की बंदूक का उस पर वार हुआ। ऐसी स्थिति में रावल पूंजा बादशाह से पुकार करने को रवाना हो गया। डूँगरपुर पर मेवाड़ का अधिकार हो गया और मेवाड़ी सेना ने गेकसागर नामक स्थान पर अपना ठहराव किया-इस प्रकार महाराणा की विजय हुई।

जहाँगीर ने मेवाड़ के प्रान्तों के अतिरिक्त डूँगरपुर बांसवाडा देवलिया (प्रतापगढ़) के इलाके कुँवर कर्णसिंह को सन् १० जुलूस ता० २१ उर्दी बहिश्त हि. स. १०२४ ता० २२ रवि उसमानो= वि० १६७२ ज्येष्ठ वदि ८= ई. स. १६१५ ता० ११ मई को दे दिये। वडवे की ख्यात पु में जराज का स्वर्गवास सं० १७१५ में हुआ लिखा है। उसके पुत्र गिरधरदास का प्रथम ताम्रपत्र वि० १७१४ फाल्गुन वदि ६ का मिला है जिसमें महारावल पुंजराज के वार्षिक श्राद्ध के अवसर पर भूमिदान का उल्लेख किया गया है। एक पुरानी वही में महारावल शिवसिंह तक की पीढ़ियाँ हैं, वि. सं० १७१३ फाल्गुन सुदि ६ (ई० स० १६५७ ता० ६ फरवरी) को उसकी मृत्यु होना बताया गया है।

विदुर कवि ने झूलणा नामक पद्यों में उसका वर्णन किया है। इस वर्णन का लिपिकाल १७७१ आश्विन शुक्लपक्ष है तथा लिपिकार का नाम रामचन्द्र है।

इसी प्रकार प्रसिद्ध वीर रावत चूंडा से लेकर रावत जोधसिंह (द्वितीय) तक का इसमें क्रमशः वर्णन हुआ है।[1] वह भी ऐतिहासिकता को लिये हुए है। रावत जोधसिंह के समस्त साथियों का तो इसमें विस्तार से वर्णन हुआ है।

इस भाग में यही विशेषता है कि अन्य राजस्थानी साहित्य की भाँति इसे बढ़ाकर नहीं लिखा गया। केवल वास्तविक घटनाओं पर ही सही २ प्रकाश डाला गया है, जिससे इसे ऐतिहासिक काव्य कहने में किसी प्रकार संकोच नहीं होता।

यह भी स्पष्ट करदेना आवश्यक है कि भाग आठ में गीतों के अन्तर्गत अन्य जाति के पद्यों को भी स्थान दिया गया, इसी प्रकार प्रस्तुत भाग में भी अन्य जाति के पद्य आरहे हैं। लेकिन उन्हीं पद्यों को स्थान दिया गया है, जो राजस्थानी गीतों के साथ २ अन्य पद्यों को डिंगल [राजस्थानी] भाषा के आचार्यों ने राजस्थानी के पद्य माने हैं। प्रसिद्ध कवि मंछाराम डिंगल का प्रमुख आचार्य माना जाता है। जिसने ७२ प्रकार के गीतों के साथ २ चार प्रकार के दोहे, चार प्रकार की छप्पय, दो प्रकार की वचनिका, बारह प्रकार की निसाणियें, पाच प्रकार की कुण्डलियाँ और एक प्रकार की गाथा को भी अपने गीतों की पुस्तक "रघुनाथ रूपक" में स्थान दिया है।

---

१. सुप्रख्यात त्यागवीर चूंडा महाराणा लाखा के पुत्र थे, इनका समय १५ वीं शताब्दी है। इस वर्णन में चूंडा से लगाकर सलूम्बर के रावत जोधसिंह (द्वितीय) तक का वर्णन हुआ है। जोधसिंह के वर्णन में उनके समस्त साथियों का विस्तार से परिचय दिया है। यह प्रति बिखरी हुई थी उसे ठीक कर क्रम दिया गया है।

"चहुं जात दोहा च्यार छप्पय जात बहुतर गीत री।
दुय दवावैतां वचनका विध च्यारूं रीत री॥
निसाणियां दस दोय निरमल कुंडल्यां पंच केवल।
इक आद गाथा छंद अंतह जुगत कर करजे यले॥

इक कविने अन्य पद्यों के साथ गीतों को भी छंद ही माने हैं। अतः इस आधार पर "प्राचीन राजस्थानी" गीतों में अन्य पद्यों को स्थान देने में कोई दोष नहीं मानना चाहिये। हमें भी जान बूझ कर ऐसा ही करना पड़ा है।

नोट:—देखिये "रघुनाथरूपक" पृष्ठ १३८, सं० कवि जयलाल शर्मा प्रकाशक शार्दूल शरण प्रेस, कृष्णगढ़।

विषय-सूची

[भाग ११]

शार्दूल परमार

दूहा

पदमनाम वंदे चरण, कवि कीजे कुल काम ।
तं आरमित कज्जड़ा, सिरि चाढ़ै श्री राम ॥ १ ॥

अर्थः– जिनकी नाभि से कमल उत्पन्न हुआ है, ऐसे विष्णु के अवतार श्री राम के चरणों की वन्दना करता हूँ और कवि-कुल के कार्य काव्य-रचना का प्रारम्भ करता हूँ ।

सिंदूरहि सिंदूरिया, सिरि सेवंती भार ।
प्रथम विनायक प्रणविजै, पारंभिहिं परमार[1] ॥ २ ॥

अर्थः—गहरे सिंदूर से जिसका भाल चर्चित है, ऐसे विनायक को प्रणाम कर मैं प्रमार वंशीय (वीर शार्दूल) का वर्णन करता हूँ ।

छंद भुजंगी

प्रणंमा गुणंमै सिधी बुद्धि (ऋद्धि) पत्ती,
मनें कोड़ि तेंत्रीस देवं सुमत्ती ।
हिये जास खत्रीभ्रगं काज हित्ती,
कहाँ तास सादूल पंमार कित्ती ॥ ३ ॥

टिप्पणी.—१ मूलपाठ "पारंभिहिं पदियार" है; परन्तु विषय की दृष्टि से "परमार" ही होना चाहिये ।

अर्थः—जो ऋद्धि-सिद्धि के गुणवान् स्वामी हैं, जिनको श्रे बुद्धि वाले तैंतीस करोड़ देवता मानते हैं, ऐसे गणेश की वन्दना करं मैं, प्रमार शार्दूल जिसका हृदय क्षात्र-धर्म और परोपकार से भर हुआ है, का कीर्तिगान करता हूँ।

रमे हसरूढा सरमत्ति राणी,
वयदा पयं मूझ दे निभ्रम वाणी।
वरे जास त्रीविद्धि घड़ा जोर वंती,
कहां तास सादूल पंमार कित्ती॥ ४॥

अर्थः—हंसारूढ़ होकर विहार करने वाली सरस्वती महारानी चरणों की वन्दना करता हूँ, जिससे वह मुझे वाक्शक्ति प्रदान करे *मैं उस शार्दूल प्रमार के यश का वर्णन करता हूँ, जो तीनों प्रकार* (पैदल, अश्वारोही और गजारोही) शक्ति शाली सेना का वरण (अधिकार में) करता है।

उभै बाह सनाह सामी अपन्ली,
कड़क्खे जिसौ सीह दीसे कविल्ली।
सदा जोध अन्लोध यै ऊर सत्ती,
कहां तास सादूल पमार कित्ती॥ ५॥

अर्थः—हे सरस्वती! जिसकी कोई समानता नहीं कर सकता स्वामी के लिए जिसकी दोनों भुजाएँ कवच तुल्य हैं, जो गर्जना करने में सिंह के समान और वाराह तुल्य दिखाई देता है। इस के अतिरिक्त वह योद्धा किसी से भी नहीं कुचला जाने वाला है, ऐसे वीर शार्दूल प्रमार का मैं यश गान करता हूँ।

सादूलो सादूला सहव्जे सद्दाम्रै,
खलाँ मेगलां हाथलां मारि खाम्रै।
मौजे मोज वीक्रम जगदेव मत्ती,
कहाँ तास सादूल पमार कित्ती॥ ६ ॥

अर्थः—वह सिंह के समान वीरों को धर दबाता है और हाथियों जैसे शत्रुओं को कराघात कर नष्ट कर देता है। जो भोज, विक्रम और जगदेव जैसी उदार प्रकृति का (दानी) है, ऐसे शार्दूल प्रमार का मैं यशगान करता हूँ।

दिठै सत्र सांकै कर्मा जांणि दुत्तां,
रिमा थाट रोळै रणंताल रुत्तां।
खगै त्यागि सूटी नहीं जास खत्ती,
कहां तास सादूल पंमार कित्ती॥ ७ ॥

अर्थः—जिसको उसके पूर्वज कर्मचन्द जैसा ही वीर मान शत्रु सशंकित होते हैं। शत्रु समूह पर लगातार वार करने में सलग्न हो उसका मर्दन कर देता है, जिसके खड्ग और दान की ख्याति भी अनुपम है: ऐसे प्रमार शार्दूल का मैं यश गान करता हूँ।

हरीपाल महिपाल राघां हठाला,
क्रमा पंचयण माल कहियै कंत्राला।
वळे जास तरुवारि दुनियां वदित्ती,
कहां तास सादूल पंमार कित्ती॥ ८ ॥

अर्थः—जिसके पूर्वज महान् हठी एवं वृषभ स्कंध, हरिपाल, महिपाल, राघवदेव, कर्मचन्द, पंचायण और मालदेव कहे जाते हैं।

उन्हीं के समान, संसार जिसकी तलवार की प्रशंसा करता है उस शादूल प्रमार के गुणों का मैं गान करता हूँ।

छन्द बेअक्खरी

किती भड़ सादूल कहिज्जै,
दुयणा घणां जेणि जुध दिज्जै।
कलह दांन नाकार न किज्जै,
चंडावलां रीति चालिज्जै॥ ६ ॥

अर्थः—वीर शादूल ने बहुत से शत्रुओं से युद्ध किया, उसने कभी युद्ध करने और दान देने से मना नहीं किया और अपने पूर्वज चण्डावलों की परंपरा और रीति नीति के मार्ग पर चलाता रहा है, उसकी कीर्ति का मैं वर्णन करता हूँ।

चंडावलां खत्रिध्रम चल्लै,
है थाटाँ चँपिया ना हल्लै।
चंडावलां चहूँ खँडि चंडा,
मोटाँ ही सो भारथ मंडा॥ १० ॥

अर्थः—अश्वारोही सैन्य-समूह के दबाने पर भी जो विमुख नहीं होता है; ऐसे चण्डावला के वंशज प्रमार-क्षत्रिय, धर्म के मार्ग पर चलने वाले हैं। वे चारों दिशाओं में प्रचण्ड वीर माने गए। क्योंकि वे बड़े २ समर्थ वीरों से ही युद्ध करते रहे हैं।

चंडावलां सही खँडि चावा,
दल जीं सुरताणा सौं दावा।
आया खालू खेति निभै अंग,
चंडावलां स जीता चौरंग॥ ११ ॥

अर्थः—चंडावल के वंशज प्रत्येक खंडों में प्रसिद्ध हैं, उनकी सेना सम्राटों पर भी दाव लगाने वाली है। ये शत्रुओं के आने पर सम्मुख होकर निर्भीक युद्ध करते हैं और चतुरंगिणी सेनाओं पर विजय प्राप्त करते रहते हैं।

सु कवि चंडावलां समत्थे,
हैं गैं लाख स दीन्हा हत्थे।
जस कवि चंडावलां ज जंपे,
मांगण सौ वद दान समप्पै ॥ १२ ॥

अर्थः—समर्थ चंडावला वंशज प्रमार, कवियों को लाखों हाथी और घोड़े दान में देते हैं। वे उनका यश वर्णन कर उसके प्रतिफल में उनसे भूमि और दान प्राप्त करते हैं

अन ऊखद छै ग्रन अगेगावैं,
भूजाई बलि करन भणावैं।
हापा महिपा राघा हत्थे,
गिम दल आवटिया मारत्थै ॥ १३ ॥

अर्थः—छः वर्णों (षट् दर्शन) को शक्ति वर्धक औषध तुल्य अन्न देते हैं और दानशील भुजाओं के कारण वे (चण्डावल) बलि और कर्ण के समान प्रसिद्धि प्राप्त करते हैं। इसी वंश के हापा, महिपा और राघव अपने भुजबल से शत्रुओं से भिड़ते रहे हैं।

करमचन्द जगमाल कहिज्जैं,
दल वीजांही ओपम दिज्जैं।

पांचा माल चित्रगढ ऊपरि,
गोगी ठेलि न ठिलिया गैवरि ॥ १४ ॥

अर्थः—प्रख्यात वीर कर्मचन्द और जगमाल कहे जाते हैं। जिनकी उपमा अन्य सेनाओं के बड़े २ वीरों से दी जाती है। जब चित्तौड़गढ़ पर आक्रमण हुआ उस समय पंचायण और मालदेव ने यवनों को पीछे धकेल दिया, परन्तु वे शत्रुओं के हाथियों की टक्कर से पीछे नहीं हटे।

पांचै बद्दर सरिस अड़प्पे,
अकबर सरिस माल जुध अप्पे।
रौद्रां सैं आफलि छलि राणा,
ऊजेणे परिगह आपांणा ॥ १५ ॥

अर्थः—पंचायण बहादुर शाह से (चित्तौड़ के युद्ध में) अड़ा (लोहा लिया) और मालदेव ने अकबर से (चित्तौड़ शाके में) युद्ध किया। उन्होंने महाराणा की सहायता करते हुए यवनों से भिड़ कर अपने उज्जैन राजवंश की शक्ति सिद्ध कर दी।

मुहँड़े खांड भुजा हँड मडे,
खंडरिये सिर रौद्रां खडे।
पासैं वंस छत्रीसइ पेखै,
देव मुनीवर भारथ देखैं ॥ १६ ॥

अर्थः—सामना करते हुए पंचायण ने शत्रुओं के खड्ग-प्रहार को भुजाओं पर सहन किया और अपने खड्ग द्वारा मुगलों के मस्तक काट दिए। उसके प्रसिद्ध युद्ध को छत्तीस ही वंश के क्षत्रिय, देवता तथा मुनिगण देखते ही रह गए।

फरियां सो सर सावन फूटैं,
जुधि पंमार अस पति जूटैं।
वहसै वहदर तणा बंगाला,
गाण तणा निहँसै रउताला ॥ १७ ॥

अर्थः—जिस समय प्रमार वीर, शाह से लड़ने लगे, उस समय उनके भाले शत्रुओं के वक्षःस्थलों को पार कर गए। बहादुरशाह के बङ्गाली सैनिकों ने युद्ध छेड़ा। उसी समय महाराणा के रावत पदधारी वीर, दुर्ग से निकल सामना करने लगे।

पंचायण ओडवै पमारां,
हेकौ कौ भड़ सरिस हजारां।
परिगह सांग तणो सहँ पूर्गो,
सुति पंमार सुरपति सूरां ॥ १८ ॥

अर्थः—एक वीर पंचायण की समानता सहस्र वीर योद्धा भी नहीं कर सकते। वह प्रमार क्षत्रियों के लिए अर्गला तुल्य था। उस युद्ध में राणा सांगा के सभी कुटुम्बी सम्मिलित थे और उनके बीच वह वीर प्रमार वास्तव में इन्द्र के समान प्रतीत होता था।

गिड़ परमार गजां दल गाहै,
सबकै पहिलौ मारथ साहै।
नेजां गुरज कयबर नग्गे,
लोही असपति हींदू लग्गे ॥ १९ ॥

अर्थः—वाराह रूपी प्रमार वीर, गज-सेना को कुचलता हुआ समस्त वीरों में अग्रगण्य होकर युद्ध करने लगा। उस समय नेजा,

पांचा माल चित्रगढ ऊपरि,
गोगी ठेलि न ठिलिया गैवरि ॥ १४ ॥

अर्थः—प्रख्यात वीर कर्मचन्द और जगमाल कहे जाते हैं। जिनकी उपमा अन्य सेनाओं के बड़े २ वीरों से दी जाती है। जब चित्तौड़गढ़ पर आक्रमण हुआ उस समय पंचायण और मालदेव ने यवनों को पीछे धकेल दिया, परन्तु वे शत्रुओं के हाथियों की टक्कर से पीछे नहीं हटे।

पांचै बहदर सरिस अड़प्पे,
अकबर सरिस माल जुध अप्पे।
रांद्रां सें आफालि छलि राणा,
ऊजेणे परिगह आपांणा ॥ १५ ॥

अर्थः—पंचायण बहादुर शाह से (चित्तौड़ के युद्ध में) अड़ा (लोहा लिया) और मालदेव ने अकबर से (चित्तौड़ शाके में) युद्ध किया। उन्होंने महाराणा की सहायता करते हुए यवनों से भिड़ कर अपने उज्जैन राजवंश की शक्ति सिद्ध कर दी।

मुहँड़े खांड भुजा हँड मडे,
खडरिये सिर रोद्रां खडे।
पासें वंस छत्रीसड़ पेखें,
देव मुनीवर भारथ देखें ॥ १६ ॥

अर्थः—सामना करते हुए पंचायण ने शत्रुओं के खड्ग-प्रहार को भुजाओं पर सहन किया और अपने खड्ग द्वारा मुगलों के मस्तक काट दिए। उसके प्रसिद्ध युद्ध को छत्तीस ही वंश के क्षत्रिय, देवता तथा मुनिगण देखते ही रह गए।

फरियो सो सर मावन् फूटै,
जुधि पंमार अम प्रति जूटै।
वहसै वहदर तणा बंगाला,
राण तणा निहँसै रउताला॥ १७॥

अर्थः—जिस समय प्रमार वीर, शाह से लड़ने लगे, उस समय उसके भाले शत्रुओं के वक्षःस्थलों को पार कर गए। बहादुरशाह के बङ्गाली सैनिकों ने युद्ध छेड़ा। उसी समय महाराणा के रावत पदधारी वीर, दुर्ग से निकल सामना करने लगे।

पंचायण ओडवै पमारां,
हेको कौ भड़ सरिस हजारां।
परिगह सांग तणो सहँ पूरौ,
सुनि पंमार सुरपति सूरौ॥ १८॥

अर्थः—एक वीर पंचायण की समानता सहस्र वीर योद्धा भी नहीं कर सकते। वह प्रमार क्षत्रियों के लिए अर्गला तुल्य था। उस युद्ध में राणा सांगा के सभी कुटुम्बी सम्मिलित थे और उनके बीच वह वीर प्रमार वास्तव में इन्द्र के समान प्रतीत होता था।

गिड़ परमार गजां दल गाहै,
सबके पहिलौ मारथ साहै।
नेजां गुरज कर्यबर नग्गे,
लोही असपति हींदू लग्गे॥ १९॥

अर्थः—वाराह रूपी प्रमार वीर, गज-सेना को [illegible] समस्त वीरों में अग्रगण्य होकर युद्ध करने लगा। [illegible]

गदाएँ और नग्न कयम्बर (अस्त्र) ग्रहण कर बादशाह (और उसके सैनिक) तथा हिन्दू-वीर लड़ने लगे।

लोथां येहड़ तेहड़ लोथी,
बत्थांलूय हुआ गलबत्थी।
मुहँडे खांडि थियो जुध मल्लां,
ढहि ढँचाल पड़े ढ़िग ढल्लां॥ २०॥

अर्थः—युद्ध भूमि में मृत शवों की दुगुनी तिगुनी ढेरी लग गई और झगड़ते हुए वीर गुत्थमगुत्था होगए। खड्गधारियों का आपस में सामना होने पर ऐसा दृष्टिगोचर होने लगा मानों मल्लों की भिड़न्त हुई हो। उस समय भयंकर वीर धराशायी होगए और उनकी ढालें हाथों से गिर पड़ी।

धड़ धड़ त्रूटंते मुहि धारां,
पुहप बरसिया सीसि पमारां।
पांचां खांडि तणै मुंहि पड़िया,
चांमरियाल चीत्रगढ़ि चड़िया॥ २१॥

अर्थः—खड्गों की तीक्ष्ण धार प्रत्येक वीर के शरीर पर लग कर टूट गई। यह देख कर प्रमार-वीरों पर पुष्पवृष्टि होने लगी। इस प्रकार युद्ध करता हुआ पंचायण तलवारों द्वारा कट कर धराशायी हुआ। तभी चँवरधारी (बादशाह) चित्तौड़ के दुर्ग पर चढ सका अर्थात् अधिकार प्राप्त कर सका।

माकौ करि सहँ कुलां सहेतौ,
पंचायण हरिजोति पहूँतौ।

त्रूटि थिया खगि निहसत हस्सं,
सौ सौ हींदू असुर सहस्सं॥ २२॥

अर्थः—इस प्रकार वीर पंचायण, शाका (प्रसिद्ध युद्ध) करके सकुटुम्ब ईश्वर की ज्योति में विलीन होगया। अन्य वीरों के प्राण-पखेरू भी खड्ग द्वारा कटकर उड़ गए। परन्तु जहाँ सौ हिन्दू मारे गए, वहाँ उनके द्वारा सहस्र मुगलों का नाश होगया।

चढ़िया सूंदे रुधिर चहच्चह,
गोरी दल चित्रोड़ि गहंमह।
दल पल खंडि रुधिर भरि दीधौ,
कोटि वहादर वास न कीधौ॥ २३॥

अर्थः—मुगल सेना और चित्तौड़ेश्वर की सेना गर्जती हुई भिड़ गई। तत्पश्चात् रक्त से परिपूर्ण खड्गों को पार करते हुए मुसलमान दुर्ग पर चढ़े। इसप्रकार सेनाओंके कटने से युद्ध-भूमि मांस और रुधिर से परिपूर्ण होगई। परन्तु फिरभी बहादुरशाह चित्तौड़ पर निवास नहीं कर सका।

आहड़ां सत आडौ आयौ,
वळे राणि चीत्रोड़ वसायौ।
विकमादीत गंणवित पनौ,
दईव उदैसिंघ सिरि छत्र दीनौ॥ २२॥

अर्थः—इस युद्ध में आहड़ (सिशोदिया) राजवंश का सत्य (धर्म) ही उनकी रक्षा कर सका और जन-शून्य चित्तौड़ पुनः बसाया, जब राणा विक्रमादित्य का स्वर्गवास हुआ, तब ईश्वर ने राणा उदयसिंह के मस्तक को छत्र से सुशोभित किया (सिंहासनासीन हुआ)।

उदयसिंघ　प्रतप्पै　एहौ,
जाणि क गोकलि कान्हक जेहौ।
राणा सेन सयल सिरदारं,
पह सँहँ ओपम माल पमारं ॥ २५ ॥

अर्थः—महाराणा उदयसिंह अपने प्रताप से मेवाड़ पर इस प्रकार शासन कर रहा था, जिस प्रकार गोकुल में कृष्ण। महाराणा की सेना में जितने सरदार थे, वे सब राजवंशी थे। उनमें मालदेव प्रमार उपमान तुल्य था।

राणा कन्हा माल रीसांणौ,
परठे अकबर दिसां पयांणौ।
माल पमार अकब्बर मिलियौ,
सबलो ग्रास दियौ सांभलियौ ॥ २६ ॥

अर्थः—मालदेव महाराणा से रुष्ट होकर बादशाह अकबर के पास चला गया। सुना है कि बादशाह से भेंट होने पर उसने उसे अच्छी जागीर दी।

अकबर साहि चीत्रगढ़ ऊपरि,
डोहण धरा थियौ गज डंबरि।
अकबर कन्हा तेणि ऊचलियौ,
मालो आवि राण सौं मिलियौ ॥ २७ ॥

अर्थः—जब अकबर ने मेवाड़ के भू-भाग को उथल पुथल के लिए चित्तौड़ पर चढ़ाई की, तब मालदेव उस (बादशाह) के [illegible] होकर महाराणा से आ मिला।

सूर पमार आवियो सत्तिहिं,
भुज पूजिया राण कुल मत्तिहिं।
पहिलो का वरठारा ऊपर,
सौं, जाजपुर, घँटाली, सावर ॥ २८ ॥

अर्थः—सत्य का पालन कर जब प्रमार वीर मालदेव, महाराणा से आ मिला, तब महाराणा ने अपने वंश की मर्यादा के अनुसार उसकी भुजाओं की पूजा की और पहले जो जागीर थी, उसके अतिरिक्त जहाजपुर, घंटाली और सावर का पट्टा (सनद) दिया।

भामी महिमा बीड़ौ झाले,
चढ़ियौ माल चीत्रगढ़ चालै[१]।
अकबर साह चीत्रगढ़ि आयौ,
साह बहादर नाम सवायो ॥ २९ ॥

अर्थः—विशेष सम्मान प्राप्त कर मालदेव प्रमार ने युद्ध का बीड़ा हाथ में लिया और चित्तौड़ के युद्ध में जाकर सम्मिलित हुआ। उधर बहादुर शाह से भी अधिक पराक्रमी बादशाह अकबर चित्तौड़ पर चढ़ आया।

डेरा आवि तलहटी दीधा,
कलहँणौं मांडि महोछव कीधा।

टिप्पणी:—१ प्रस्तुत पंक्ति से स्पष्ट है, कि महाराणा उदयसिंह, पहले से ही गोगुन्दा या अन्य स्थान पर जा पहुँचे थे। शाही सेना द्वारा चित्तौड़ के घेरे जाने पर उदयसिंह का दुर्ग छोड़ देना गलत साबित होता है।

निग्रह सरीर। जिलाल। निमध्या,
बुरजे बुरजे। तोरण बध्या॥ ३० ॥

अर्थः—बादशाह ने तलहटी (चित्तौड़ दुर्ग के नीचे के मैदान) में आकर विश्राम किया। यह सुन कर मालदेव ने युद्ध का उत्सव मनाया और प्रत्येक बुर्ज पर तोरण बँधवा कर जलालुद्दीन शाह अकबर को युद्ध में शरीर अर्पित (नष्ट) करने की सूचना दी।

पातसाह चीत्रौड़ि पधारे,
सीसोदियां दुरंग सिणगारे।
आसाउलि दिलि मंडव ऊपरि,
त्रिहुँ पतसाहां बांधे तोडरि॥ ३१ ॥

अर्थः—बादशाह के चित्तौड़ पर आक्रमण करने पर सिशोदिया राजपूतों ने दुर्ग को युद्ध के लिए सजाया। उधर से आसाउलि (अहमदाबाद), मांडू और दिल्ला तीनों बादशाहतों (राज्यों) पर आधिपत्य रखने वाले बादशाहों ने युद्ध के लिए पाँवों में टोडर (एक प्रकार का पद भूषण) पहना।

सुर पतसाह मांस जुध मंडे,
खुरसाणी आगमियौ खंडे।
सांगणि बाबर सै खग साहे,
गोरी हैंवर - गैंवर गाहे॥ ३२ ॥

अर्थः—मेवाड़ी वीरों ने उत्साहित होकर बादशाह से युद्ध छेड़ा। मुसलमानों से युद्ध करना इसप्रकार निश्चय किया, जैसे राणा सांगा ने बाबर की तलवार से मुकाबला किया और शाही सेना के हाथी घोड़ों को नष्ट कर दिया था।

साहि हमाऊ साथ समोले,
बहदर साह समंद्रहि बोले।
राजां गढ़े चित्रगढ़ राज,
लाईये सुरसांण सिरताजं ॥ ३३ ॥

अर्थ:—चित्तौड़ का एक प्रबल शत्रु बहादुर शाह था, उसे तो बादशाह हुमायूँ और उसके साथियों ने समुद्र में डुबो दिया (नष्ट कर दिया)। परन्तु दुर्गाधिपों के दुर्गों के शिरोमणि चित्तौड़-दुर्ग को संतप्त करने के लिए सदा से मुगलों के मुखियाओं (बादशाहों) में एक प्रकार की होड़ लगी रही।

फिरि रघुनाथ अनै वीसंकर,
सरिखा महां आवियौ समहर।
बाहर सीता हेत त्रिलागा,
उठिया हेक लंक रख आगा ॥ ३४ ॥

अर्थ:—एक ओर महाराणा रामचन्द्र के समान और दूसरी ओर बादशाह, रावण तुल्य कृत्य करते रहे हैं। इसीलिए राणा और शाह (अकबर) के समान ही वीर युद्ध में सामने हुए। उस समय वे वीर ऐसे दिखाई दिए मानों एक पक्ष के वीर (हिन्दू वीर) सीता को प्राप्त करने और दूसरे (यवन) पक्ष के वीर लंका की रक्षा करने के प्रयत्न में लगे हों।

रचियौ जेहौ जंग रमायण,
तेहां मांडयौ चीत्रोड़ायण।
नारद अपछर सूर निरक्खे,
दस दिस देव तणा गण दिक्खें ॥ ३५ ॥

अर्थः—जिस प्रकार रामायण में वर्णित राम और रावण का युद्ध हुआ था, उसी के समान युद्ध चित्तौड़ में हुआ। उस युद्ध को नारद, अप्सराएँ और देवतागण देखने लगे।

लगी सावाति सीथड़ा लागे,
धड़हड़ चड़िया सूर धियागे।
गड़ड़े नालि-माट मड़ गोला,
दल् पंडवेस थिया गढ़ दोला॥ ३६॥

अर्थः—दुर्ग उड़ाने (ढहाने) के लिए बारूद को थैलियों द्वारा सावात सुलगाया गया, जिससे धड़ाके की आवाज होने लगी। इस प्रकार यवन उत्पात मचाने लगे, तोपों और बन्दूकों की आवाज के साथ २ गोले छूट कर दीवाल के पत्थरों से टकराने लगे और मुस्लिम सेना ने दुर्ग को घेर लिया।

वहै जंबूर जबर जँग वाजै,
भाजै मेछ न हींदू भाजै।
छांटा तीर गुणा हूँ छूटै,
फूटि जर (ह, ज) रहां फूटै॥ ३७॥

अर्थः—जम्बूरों (छोटी तोपों) के छूटने से गंभीर आवाज होने लगी, परन्तु युद्ध से न हिन्दू ही विमुख होते थे, न यवन ही। तीर इस प्रकार प्रत्यंचाओं से चल रहे थे, मानों बादलों से बूँदों की वर्षा हो रही हो, जिनके द्वारा कवच एवं घोड़े फूट (बिंध) जाते थे।

चामरियाल् चढ़े गढ़ि चल्ले,
दल् रूंधा राउते दुभल्ले।

तई पतसाह सारााति पधारे,
परिगह ढूकविया पौंतारे ॥ ३८ ॥

अर्थः—चमरधारी (बादशाह और उसके साथी) दुर्ग पर चढ़ने को उद्यत हुए। उससमय राणा के भयानक वार करने वाले रावत पदधारी वीरों ने शाही दल को रोक दिया। तब बादशाह ने अपने सगोत्रीय वीरों एवं साथियों को साबात लगाने के लिए नियुक्त किया।

एहैं माल खांडि मुहि आयौ,
जोध अभंग पंचाइण जायौ।
पह पंमार बँगाला पाड़ैं,
आपह प्राणी मिलै अखाड़ैं ॥ ३९ ॥

अर्थः—इतने में पचायण प्रमार के पुत्र अभंगवीर मालदेव ने खड्गधारी यवन योद्धाओं का सामना किया तथा युद्ध-भूमि रूपी अखाड़े में प्राण अर्पित करने लिए बढ़ते हुए, शाह के बंगाली सैनिकों को धराशायी कर दिया।

माल हसती मारल मारै,
उर चाढे गढ़ हूँत उतारैं।
रूकां—धार मालदे राउत,
पल खंडरे थियाँ पांचाउत ॥ ४० ॥

अर्थः—मालदेव ने अपने भाले द्वारा शाही सेना के हाथियों को मार दिया और जिन हाथियों ने उस पर आक्रमण किया, उन्हें धकेल कर गढ़ से नीचे भगा दिया। रावत पद धारी पंचायण का पुत्र प्रमार खड्ग की धारों से अपने (शरीर) के मांस के टुकड़े २ करा दिये।

पिड़ि मालौ घमचला पईठो,
दल घमरोल दियंतो दीठौ।
फूटै अणी सांमही फेटै,
उर चाढ़े गज थाट उरेटै॥ ४१॥

अर्थः—फिर भी वह घमासान युद्ध में प्रविष्ट होगया और शत्रु-सेना में भयानक वार करता हुआ दृष्टि गोचर हुआ। शस्त्र की अनियों से बिंधता हुआ भी वह आगे बढ़ कर टक्कर लेने लगा और आक्रमण करता हुआ गज-समूह को लुढ़काने लगा।

मेछां सरिस जुड़े जुधि मल्लौ,
भणैं जगच्चख मल्लौ मल्लौ।
हाके धके चड़ावे हाथी,
साबासे असपति सुर साथी॥ ४२॥

अर्थः—वीर मालदेव को मुगल योद्धाओं से युद्ध करते हुए देख कर संसार का चक्षु रूपी सूर्य भी उसकी सराहना करने लगा। उसे हाथियों को ललकार कर भगाता हुआ देख, स्वयं बादशाह और देवगण भी धन्य २ कहने लगे।

दैवे सरिस जुड़ै हिंदुवाणौ,
अचरज तिणि नारद अघाणौ।
रूधो दळ मालदे राउत,
पिंडि पंचयण जेम पाँचाउत॥ ४३॥

अर्थः—पंचायण के पुत्र और उसी के समान उन्नत-काय उस हिन्दू वीर मालदेव को देवता के समान जूमता हुआ देख कर नारद भी आश्चर्य चकित हो गया और पंचायण का वह रावत पदधारी वीर पुत्र प्रमार भी अपने पिता के ही समान भिड़ गया।

सु तण विहड़ियो वाहै सारं,
पड़ते अंग जूजुआ पमारं।
चढ़ि गज दंते ढालां चूरे,
निरखै सुर नर कमल सनूरे॥ ४४॥

अर्थः— उस वीर प्रमार के अंग क्षत—विक्षत होकर अलग हो गए, फिर भी वह शस्त्र चलाता ही रहा। हाथियों के दांतों पर पैर देकर वह दलेती—वीरों को चूर २ करने लगा। उसके तेजस्वी मुख की ओर देवता और मनुष्य देखते ही रह गए।

बे-लख घट फूटै बाणाउलि,
हाकै माल दलां हे हाहुलि।
जुध अरि माल छड़ालै जूटै,
फूटै बगतर पंजर फूटै॥ ४५॥

अर्थः— जिस समय मालदेव ने पृथ्वीराज के सामन्त हाहुलि-हमीर के समान सेना में घोड़े को बढ़ाया उस समय दो लाख वीरों के शरीर बाणों से बिंध कर फूट गए। भाले द्वारा उसके युद्ध करने पर शत्रुओं के शरीर कवचों सहित फूटने लगे।

हसति खांद रा मालै हाथे,
सूंडि पड़ै दांतूसल साथे।
मार माल सिरि दूणा साहै,
बैराइयां चौगुणा वाहै॥ ४६॥

अर्थः— मालदेव के प्रहार से यवन-सेना के हाथियों की सूंडें दांतों सहित कट कर गिरने लगी। उस शूर-वीर के मस्तक पर जब दुगुने शस्त्राघात होते तो वह बमके उत्तर में शत्रुओं पर चौगुना वार करता।

लेलेकार. असप्पति लागै,
श्रौडै वंस छत्रीसै श्रागै ।
जैऽकार . राम मुख जप्पै,
एमुहौ एकोइ चरणन अप्पै ॥ ४७ ॥

अर्थः—बादशाह के बढ़ने पर, ललकारता हुआ वीर मालदेव छत्तीस ही वंश के क्षत्रियों के अग्रभाग में रहकर अर्गला रूप बन गया। भगवान रामचन्द्र की जय जयकार करते हुए अन्य क्षत्रिय भी युद्ध में कदम पीछे नहीं हटाते थे ।

थट आंवड्ड हुअँ धर थरहर,
सु रह मगत्त भगत्ता सूं घर ।
निहटा मारथि खींद नरिंदा,
वंदा पच्छिम पूरब वंदा ॥ ४८ ॥

अर्थः—वीर-समूह के भिड़ने पर पृथ्वी कंपित होने लगी । क्षत्रियोचित युद्धमार्ग पर विचरण करने से वे वीर (शीघ्र मोक्ष प्राप्त करने के कारण) भक्तों से भी श्रेष्ठ कहलाए । पश्चिम दिशा को (चन्द्रमा से) वंदना करने वाले (यवन) और पूर्व दिशा को (सूर्य से) वंदना करने वाले (हिन्दू) वीर उस युद्ध में वीर गति को प्राप्त हुए ।

दीन महंमद महमँद दक्खे,
करग वाबरें असुर कड़क्खैं,
......दीन रौद्रां दल दाखै ।
रिणि रौद्रवै तणाछल राखैं ॥ ४९ ॥

अर्थः-मुहम्मद के धर्म के अनुयायी (यवन) मुहम्मद साहब का स्मरण कर ललकारतेण खड्ग प्रहार करने लगे । इधर से (हिन्दू वीर)

यवन सेना से कहने लगे कि हम शिवस्वरूपी राणा के सहायक हैं, हम युद्धस्थल को अपने अधिकार में करेंगे (विजय प्राप्त करेंगे)।

> विहूँ दलि गुणे विछूटे बाणा,
> ······हो सों हाती उड़ाणा ।
> असुर सुरां सिरि वहैं अगार,
> त्रिममो थियाँ दलां वीहार ॥ ५० ॥

अर्थः—दोनों ओर की सेनाएँ प्रत्यंचा पर बाण चढ़ा कर चलाने लगीं।······गज सेना समाप्त होगई । सुरासुर रूपी हिन्दू व वीरों के मस्तकों पर तोपें और तुपकादि द्वारा भीषण अग्नि वर्षा होने से सेनायें विस्मित रह गई ।

> माथे गढ़ जग नेत्र झलंमल,
> मेर सीरठे होली ·गल ।
> सुहड़ा माथे मार मर्णक,
> ऊँचो रुधिर धार ऊरर्क ॥ ५१ ॥

अर्थः—वीरों पर झनझनाते हुए शस्त्राघात होने लगे, जिसमें लाल रंग की रक्त धारा ऊपर उठती हुई इस प्रकार दृष्टि गोचर हुई मानों दुर्ग पर (प्रलय कालीन) सूर्य-प्रभा फैली हो, या सुमेरु पर्वत का शिखर देदीप्यमान हुआ हो, अथवा होलिकोत्सव मनाया जा रहा हो (अथवा—दुर्ग- शिखर पर उस समय सूर्य इस प्रकार दमदमा रहा था मानो सुमेरु पर्वत के शिखर पर होलिकोत्सव मनाया जा रहा हो (होली जलाई जा रही हो), वीरों पर झनझनाते हुए शस्त्राघात होने पर शोणित-धारा ऊपर को उठने लगी)।

सालिगराम सुपटे सुंदर,
माल गलैं सिरि तुलसी मंजर ।
माला तणा भीड़ मच्छालं,
सावलें छड़ै सीम सूंडालं ॥ ४७ ॥

अर्थः—मालदेव के घट में शालिग्राम गले में माला एवं सिर पर तुलसी की मंजरी सुशोभित थी। मालदेव के मस्ताने एवं भयंकर वीर, हाथियों के मस्तक पर भालों के प्रहार करते हुए शोभायमान थे।

बाण कबांण भांजि बाहां बल,
सिंधुर भागा भांजे सावल ।
तइयां सिरे असिमर तूटा,
खांडि खांडि राउत पल खूटा ॥४८॥

अर्थः—अपने भुज-बल से शत्रुओं के बाण प्रत्यंचा सहित तोड़ दिए। भालों की अनियों के हाथियों के अंगों पर टूट जाने से वे भी युद्ध-भूमि से भागने लगे। संतप्त करने वाले (यवन) शत्रुओं के मस्तक खड्गों द्वारा टूट (कट) गए। इस प्रकार युद्ध करते हुए हिन्दू वीरों के पल-पिंजर खण्ड २ होगए।

दल घन घन गउतां दुआढ़ां,
दुसहां उरि भागी जमदाढ़ां ।
तीर धनख तरक्कस तूटे,
जुधि मूगल तरकसबंध, जूटे ॥ ४६ ॥

अर्थः—रावत-पद धारी वीरों की कटारियाँ शत्रुओं के वक्षस्थलों को विदीर्ण करती हुई टूट गई। यह देख कर दोनों सेनाएँ धन्य २

कहने लगी। जिस समय भाथा (तरकस) कसे हुए हिन्दू वीर मुगलों से उलझ पड़े उस समय बहुत से तीर और धनुष टूट गए।

नेजा रहंच करे नेजाल,
फरी नाराजी सौ फरियालं।
खांडा हत्थ पड़े रंध खंजर,
किलंब पड़े बंधण जर कमर ॥ ६० ॥

अर्थ—नेजाधारी नेजाधारी से, ढलैत ढलैत से, धनुर्धारी धनुर्धारी से और खड्गधारी से खंजरधारी जूझ गए, जिससे कमर कसे हुए मुगल वीर धराशायी होगए।

जुड़े जुड़े जोधार जूआणं,
पड़िया परगल थाट पठाणं।
जुधि जुड़ि पड़े असल्ली जद्द,
माता फिरै उ‍म्रत मद्द ॥ ६१ ॥

अर्थ—युवक योद्धा जूझ पड़े, जिससे पठानों के समूह के समूह पृथ्वी पर गिर पड़े। इस प्रकार कुलीन, हिन्दू योद्धा युद्ध में जुट पड़े, तब चंडी उन्मत्त होकर विचरने लगी।

चामरियाल चीत्रगढ़ि चढ़िया,
पंच निवाज गुदारण पड़िया।
रोजा ग्रीम रखा रिम राहं,
नर बह पाड़िया कटे सनाहं ॥ ६२ ॥

अर्थ—दिन में पांच बार नमाज पढ़ने वाले व तीस दिन के रोजे रखनेवाले यवन शत्रु बख्तरों सहित कट कट कर धराशायी हुये। तत्पश्चात् ही बादशाह चित्तौड़-दुर्ग पर चढ़ने में कामयाब होसका।

तेगां धार ऊभै दल त्रुट्टे,
आधो असुर कटक आवट्टे
मेवाड़वै सुछलि जुध मंडे,
खुरसाणीय बीस गुण खंडे ॥ ६३ ॥

अर्थः—खड्ग-धार से दोनों सेनाएँ कट कर गिरने लगीं। इ
युद्ध में शाही दल आधा समाप्त होगया। मेवाड़ेश्वर के पक्ष के वीर त
मारे गए, जब उन्होंने अपने से बीस गुने विपक्षी यवनों का संहा
कर दिया।

पड़िया हींदू मेछ पगारै,
पिड़ि हेकोकां पच पचारै।
लोही हींदू मेछ लड़ो लड़ि,
खांडि तणै त्रुटि हुवा खीचड़ि ॥ ६४ ॥

अर्थः—(सिन्धु-तुल्य) यवन सेना की थाह लेते (परखते
हुए हिन्दू वीर भी धराशायी हुआ, जहां उनमें से एक धराशाही हुआ
वहां उन्होंने पाँच को ललकार कर पछाड़ दिया। वे हिन्दू और मुग़
वीर रक्तपात करने वाले योद्धा थे। अतः वे सब तलवार से कट क
टुकड़े २ होगए।

रिड़तै मुकत केस रुहिरालै,
वणियो माल सग्राम विचालै।
आरति हंसा अपछर आवै,
पुहप-माल कंठे पहिरावे ॥ ६५ ॥

अर्थः—शिखा-हीन यवनों से झगड़ता हुआ वीर मालदेव युद्ध भूमि में रक्त रंजित होगया। उसकी आत्मा का वरण करने की इच्छा से अप्सरा ने आकर उसके गले में पुष्पमाला पहनाई।

धमल गंग गाड सिर धारं,
पूजीजै रुद्र-माल पमार।
पित आप रा जेम अणपल्ल,
मिलियाँ मुगति पदारथ मल्लं ॥ ६६ ॥

अर्थः—दृढ़ता पूर्वक गंगा के प्रवाह को मस्तक पर धारण करने वाले शिव ने उस मालदेव प्रमार की पूजा की। वीर मालदेव ने अपने पिता के समान ही मोक्ष रूपी अमूल्य पदार्थ प्राप्त किया।

त्रूटौ सारे माल निभै तन,
गायां खुरेक जाणे गोधन।
पड़ियाँ मालो खाडि पगारे,
श्रोण तणां पिड पितरां सारे ॥ ६७ ॥

अर्थः—उस निर्भय वीर मालदेव का शरीर लोहास्त्र से इस प्रकार टूट गया जैसे गोवर्धन गौओं के खुरों द्वारा कुचला गया था। वह विपत्तियों के गड्ढों की थाह लेता (परखता) हुआ और शोणित से अपने पितरों के पिंडों पर जलाञ्जलि देता हुआ सदा के लिए युद्ध-भूमि में सोगया।

कजि चीत्रौड़ करे महि कंदल,
मालि भेदियाँ सूरिजमंडल।
माला तणा सुतन कलि मूलं,
गरु सुरताण गांग सादूलं ॥ ६८ ॥

माला तणा सुतन वड मंनं,
कला बलिभद्र आसकरंनं।
कोई कहे नहँ हालै फेड,
सीहां आप आप सा खेड़ ॥ ६९ ॥

अर्थः—इस प्रकार चित्तौड़ दुर्ग की रक्षा के लिए युद्ध करके मालदेव ने सूर्य-मण्डल से भी ऊपर स्थान प्राप्त किया। उस मालदेव के क्रमशः प्रसिद्ध युद्ध करने वाला, कलह-प्रिय सुलतानसिंह, सांगा और शार्दूलसिंह ॥६८॥ तथा उदारमना कलियान, बलभद्र और आशाकर्ण नामक छः पुत्र थे, जो किसी के कहने पर भी युद्ध भूमि से विमुख होने वाले नहीं थे और उनका युद्ध एवं स्वरूप सिंह के समान था।

रहियाँ राणा सोढ़ रिम रां,
सांग सादूल मिले पतसाहं।
माल तणा सुत मांझी मारं,
पातशाहि वासीया पमार ॥ ७० ॥

अर्थः—उन में से प्रमुख वीर सांगा और शार्दूल ने महाराणा से संबन्ध तोड़ कर यवनों के पथ का अनुसरण किया (मेल कर लिया) और बादशाह से जा मिले। शाह अकबर ने उन्हें वीरों को मारने में समर्थ देख कर अपने पास रख लिया।

अकबर देखे वडा अपारां,
पटो कीयाँ वधणांर पमारां।
दिद पतसाहि पटो करि दीधाँ,
कविलै वास मग्रदै कीधाँ ॥ ७१ ॥

अर्थ:—अकबर ने उन प्रमार वीरों (सांगा और शार्दूल) को प्रचण्ड वीर मान कर बदनौर का पट्टा (जागीर की सनद) सदा के लिए कर दिया। तब उन प्रमार वीरों ने सकुटुम्ब मसूदे में आकर निवास किया।

चांपी नांही सीम नीसा चरि,
...सोहपि करीयां समसरि ।
ओजीणौ बधणौरै आयौ,
सो राठौड़ां मनि न सुहायौ ॥ ७२ ॥

अर्थ:—उन्होंने रात्रि में छापा मार कर बदनौर के भू-भाग को अधिकार में लेना उचित नहीं समझा; क्योंकि (दोनों ओर के) वीर सिंह और हाथी के समान पराक्रमी थे। वे उज्जैन राजवंशीय (प्रमार) जब बदनौर आए, तब राठौड़ वीरों को उनका आना खटका।

(औजी) णौ रिखमां किम आयां,
आणा खांडा मछि अछापा ।
ऊदा तणा मेटि उछाहं,
(उत्) साहे लीधा बीमाहं ॥ ७३ ॥

अर्थ:—जब उन उज्जैन राज-वंशज प्रमारों को संभल कर (सुसज्जित होकर) आते देखा तो राठौड़ों को शंका हुई। उन सभी ने भयानक खड्ग उठाए। उन्होंने कहा:—"कि प्रारम्भ में ही इन्होंने ऊदावत राठौड़ों का उत्साह अपनी शक्ति से भंग कर दिया है और अब ये उत्साहित होकर आगे बढ़ रहे हैं।

सेथ मंडोवर सगिसा खंडै,
मेड़तिया हीसौं जुध मंडे ।
जे बधणौरि पमारज जमे,
दल अजमेर तणी आंगमे ॥ ७४ ॥

अर्थः—यदि पमार वीर बदनौर पर स्थापित हो जाते हैं, तो शाही सेना जो अजमेर में है— वह इनके पक्ष में हो जायगी और इनके बल पर मुसलमान मंडोवर जैसे राज्य को भी समाप्त कर देंगे एवं मेड़तिया (राठौड़ों) से भी युद्ध छेड़ देंगे ।

कूड़ों सांचौ दोस कहीजै,
कंदल मिलै तका विधि कीजै ।
विधि राठौड़ां एह विचारे,
समहर रचे सांकड़ौ सारे ॥ ७५ ॥

अर्थः—अतः इन पर सत्यासत्य का दोषारोपण कर ऐसा उपाय करना चहिए, जिससे युद्ध छिड़ जाय । यह सोचकर राठौड़ों ने समीप ही भिड़कर लोहा लेने का निश्चय किया ।

माग्थ सूंत्रि हुआ मेला मड़,
धुधारणा सरीसा धूहड़ ।
जैतारणि मेड़तौ जोधपुर,
गादिम पणी चढे मुड सांगुर ॥ ७६ ॥

अर्थः—तत्पश्चात् जेतारण, मेड़ता और जोधपुर के शासक जो ध्रुव के समान दृढ़ विचार वाले धूहड़ (राठौड़) थे, अपने साथियों को उत्साह और धैर्य दिलाते हुए अश्वों पर सवार हो उलट पड़े ।

सार निडार सरग मग साथी,
हूल तेड़ियो मदोमत हाथी ।
झूझ काजि कमधां दल झिलियाँ,
मांडो बात करण मोकलियौ ॥ ७७ ॥

अर्थः—उन्होंने युद्ध के लिए सेना सजा कर, निर्भयता पूर्वक शस्त्र-प्रहार करने वाले, स्वर्ग तक साथ देने वाले और मदमस्त हाथी के सदृश 'हूल' जाति के मांडा नामक वीर को बुलाकर संदेश के लिए भेजा।

पुणै विनौ सादूल पमारं,
तिय मांडौ न मिलै तिल तारं ।
चढ़िया वयण पयंपै चड़ौ,
मारि लियौ सादूल मड्डो ॥ ७८ ॥

अर्थः—उसके संदेश लेकर आने पर यद्यपि शार्दूल प्रमार ने विनीत वाक्य कहे; परन्तु मांडा तंत्री के तार के समान उससे नहीं मिला (तंत्री के तार अलग २ रहते हैं और यदि टकरा जाते हैं तो तन कर झंकार करने लगते हैं। उसी प्रकार मांडा विपक्षी से प्रथम तो मिला ही नहीं और मिला भी तो ऐंठ कर बोलने लगा)। बात ही बात में वह तेज होकर बोलने लगा, जिससे वीर शार्दूल द्वारा मांडा मारा गया।

सभिम पमारां बोलिम प्राणौ,
मांडौ मूश्रौ कलह मंडाणौ ।
मोपति श्रामकरन महामद,
उगगै ही चालंतौ श्रंनद ॥ ७९ ॥

अर्थः—वीर प्रमारों के समान ही उन्हें उत्तर देता हुआ मांडा स्वर्ग के लिए प्रयाण कर गया। उसके वीर गति को प्राप्त करने पर प्रमारों और राठौड़ों में युद्ध छिड़ गया। राठौड़ वीर भोपतसिंह, आसकरण एवं उग्रसिंह चलते फिरते पर्वत के समान प्रतीत होते थे।

> वीजाइ जोध कमँध विरदैता,
> सूरत आंकुड़िया स नसैता।
> मूंछा ताणि ऊपाड़े असिमर,
> मीढ़ ऊठिया आलि भयंकर ॥ ८० ॥

अर्थ—अन्य राठौड़ भी यशस्वी योद्धा थे। उनमें संहारक वीरता अंकुरित होगई और मूछें तानते हुए वे भयंकर नाग के समान वक्राकार होगए और तलवारें उठाई।

> आज जिमो जोतां प्रब आयो,
> जुधहूं टल स बापि न जायौ।
> होइ टामंक हलीला हल्ले,
> चढ़िया पाला खुरहैंड चल्लै ॥ ८१ ॥

वीर परस्पर कहने लगे कि:—"आजका दिन पर्व के समान शुभ है। आज के दिन युद्ध से विमुख रहने वाले व्यक्ति अपने पिता की संतान माना जायगा।" यह शब्द कहते हुए वे नक्कारों पर डंका पड़ते ही युद्ध के उत्सुक अश्वारोहियों व पैदलों ने युद्ध के लिए प्रयाण किया।

> ऊपरि परमाए आवि थाटां,
> थिया थड़बे आवें थाटां ॥ ८२ ॥

अर्थः—इस प्रकार प्रमार वीरों से विरुद्ध होकर वे राठौड़ वीर टोलियों के रूप में आ-आकर एकत्रित होगए।

॥ छंद भुजंगी ॥

वडा जोध जोधापुरा खेत वंका,
निहस्सै वर्ले मेड़तीया निसंका ।
मवे साथ दूदा अमग्गा सवाया,
इमा थाट सादूल सिरि चालि आया ॥८३॥

अर्थः—रणस्थल में बांकापन (शौर्य) रखने वाले जोधपुर के योद्धा एवं निशंक वीर मेड़तिया तथा दूदावत और अन्य वीरों ने भी युद्ध के लिए प्रयाण किया।

महाशूर धीर बली कंध मल्लं,
अँगे चालता कोट दीसँ अपल्लं ।
दिहेंसा तणा मग्ग जोए विमाया,
इमा थाट सादूल सिरि चालि आया ॥८४॥

अर्थः—उन महान धीरवीरों के स्कंध बलिष्ठ पहलवानों के समान थे और वे इधर उधर चलते हुये अनुलंघनीय दृढ़ दीवार के समान प्रतीत होते थे। वे सर्वदा मृत्युपथ की ओर (वीर गति प्राप्त करने के हेतु) उन्मुख रहते थे।

नवांकोट नायक्क निम्भै नरिंदं,
वडां विरद मन्लाउ वांकीम विंदं ।
अरिकाल् जम जाल् जगे अघाया,
इमा थाट सादूल सिरि चालि आया ॥८५॥

अर्थः—नवकोटि मारवाड़ के निर्भीक स्वामी बड़े यशस्वी थे और उनकी वन्दना बड़े २ बांके वीर करते थे। वे शत्रु के लिए काल रूप थे और युद्ध में बड़े २ यमदूतों तक को (अघा) थका देते थे।

मालां ऊदलां जैमलां तणा मांझी,
पुणे जांह तरवारि संमार प्राजी।
किये कंदले भंग छीपेन काया,
इसा थाट सादूल सिरि चालि आया ॥ ८६ ॥

अर्थः—वे (वीर) मालावत, ऊदावत और जयमलोत राठौड़ों के मुखिया थे, जिनकी तलवार शत्रुओं को पराजित करने वाली कही जाती थी। वे युद्ध में अपने अंग प्रत्यंग विनष्ट करा देते थे, परन्तु भीरु और दुबकने वाले कभी नहीं थे।

रिणे रूक हाथां समत्थां रठौड़ां,
दलां जाहँ दीधी खलां सीसि दोड़ा।
हखे हाथलां भद्र जाती हलाया,
इमा थाट सादूल सिरि चालि आया ॥ ८७ ॥

अर्थः—जो राठौड़ युद्ध समय तलवार पकड़ने में समर्थ थे और जिनकी सेना शत्रुओं पर आक्रमण करती रहती थीं और जो अपने कर प्रहार द्वारा भद्र जाति हाथियों को भी भगादेने वाले थे।

विरद्दैत राठौड़ आजन्न बाह,
रिणे दूठ रूठा जिसा रिम्म राहं।
रिणमाल जोधा दुदा दैवराया,
इमा थाट सादूल सिरि चालि आया ॥ ८८ ॥

अर्थः—जो आजानुबाहु और यशस्वी राठौड़ थे, जो शत्रुओं पर युद्ध मार्ग में यम के समान क्रोध व्यक्त करने वाले थे और रणमल, जोधा और दूदा के वंशज इन्द्र के समान थे।

कजे भूझ मत्ता धरे भार कंधं,
वहं रोड़ि नीसाणमै सक्कबंधं ।
छिले ढंबरां अंबरां रज्ज छाया,
इसा थाट सादूल सिरि चालि आया ॥८६॥

अर्थः—जिनकी मन्त्रणा केवल युद्ध के लिए ही होती रहती थी, जो युद्ध-भार को कंधों पर धारण करने वाले थे, जो शकबंध (प्रसिद्ध युद्धकर्ता) और नक्कारे बजवाकर चढ़ाई करने वाले थे। ऐसे राठौड़ों का वीर-समूह शार्दूल प्रमार पर चढ़कर चल पड़ा, जिससे रजराशि उड़ने पर (सारा) आकाश धूलिमय होगया।

॥ आर्या ॥

आया थट सादूल अपल्लं,
भूझि महा मह कमँध दुझल्लं ।
पट हथ डसणि चरण परठव्वै,
पिंडि पौतारि लोह पूजव्वै ॥६०॥

अर्थः— जो महान एवं भयंकर वीर कहे जाते थे, और जिनकी समानता कोई नहीं कर सकता था— ऐसे वीर शार्दूल प्रमार पर, राठौड़ वीरों का समूह चढ़ आया और वे वीर पटाधारी हाथियों के दांतों पर पैर देकर शत्रु-योद्धाओं के शरीर काट २ कर अपने शस्त्रों की पूजा करने लगे।

॥ दूहा ॥

सादूला दल आविया, ऊपरि तो अणपार ।
कांही जिम टाला करिसि, मँडिसी जुध परमार ॥६१॥

अर्थः— इस प्रकार राठौड़ा वीरों के चढ़ आने पर शार्दूल प्रमार को सूचित किया गया— "कि हे वीर ! तेरे ऊपर अपार सेना चढ़ आई है, क्या तू यम के समान होने पर भी वीरों से टलकर हट जायगा? नहीं ! नहीं !! तू अवश्य युद्ध करेगा।

सादूलो ऊससियाँ, सांमलिये पयणेह ।

मूंछ ऊरधे वल चड़ी, रँग चड़िया नयणेह ॥६२॥

अर्थः—यह सुनकर वीर शार्दूल उत्साहित होगया और उसकी मूँछें ऊपर उठगई तथा नेत्रों में ललाई छागई।

॥ आर्या ॥

मछरे माल सुतन्नं, बब्बरि फूलेवि त्रिसल निलवट्टं ।

सादे पयण पयंपे, भूम्भाणं दलं धारिस्सि ॥६३॥

अर्थः—मालदेव का पुत्र शार्दूल प्रमार उन्मत्त होकर बबर शेर के समान फूल गया और उसके ललाट पर त्योरियां चढ़ गई। उसने घोषणा की:—कि युद्ध के लिए सेना सजाई जाय।

सुभट वीर समत्थं, बे-पख सुध्ध पंचयण बत्तं ।

चलि आविया चलथं, अम्ह आइस्स असि आरत्ती ॥६४॥

अर्थः—शार्दूल के आदेशानुसार उसके समस्त वीर जो मातृ-पितृ-पक्ष से पवित्र, सिंहों से भिड़ पड़ने वाले, खड्ग-प्रेमी एवं शत्रुओं को विचलित करदेने वाले थे, आकर एकत्रित हुए।

पट साहण पवंगां, ओपत्ति जाहं उर निज्ज अंगा ।

सुभटां देह स चगा, अरि फौजां डोहण अणभंगा ॥६५॥

अर्थः—उस सेना में पटाधारी हाथी एवं घोड़े तथा जिनके अंग-प्रत्यंग से वीर रस झलकता था, जो असंग.वीर थे और जो शत्रु-सेना को कुचल देने वाले थे, ऐसे वे सभी एकत्रित होने वाले वीर, पुष्ट शरीर धारी थे।

तेजी पाखरिया तोखारं, सिलह पोस राउत ग्रहि सार ।
पत्रंगे आरोहिते पमारं, अरस थका आया असवारं ॥६६॥

अर्थः—शीघ्रगामी घोड़े पाखरों से सुसज्जित थे और रावत पद-धारी वीर कवच कसकर शस्त्र ग्रहण किए हुए थे। इस प्रकार प्रमार-वीर क्रोध करते हुए घोड़ों पर चढ़ कर चढ़े।

कड़े चढ़े राठौड़ कंधारं,* विडि साम्हा आविया पमारं ।
धड़ वेहड़ा चड़े स्यै धारं, आज मड़ां भाजै ओधारं ॥६७॥

अर्थः—जब कंधार राजवंशज राठोड़ वीरों ने युद्ध के लिए हठ किया तब प्रमार वीर भी सामना करने के लिए उद्यत हुए। उस समय एक के पश्चात एक खड्गधार पर चढ़ने और पहले के बदले का ऋण चुकाने लगे।

॥ सारसी ॥

फरि चढ़े फौजां कलि कनौजां चढ़े चोजा चित्तए ।
आया ऊससे धींग धस्से जुडण जस्से जित्तए ॥

---

* "पृथ्वीराज रासो में जयचंद के यज्ञ में विघ्न उपस्थित करने के लिए राष्ट्रवर बाहुबलराव कंधार पति को पृथ्वीराज ने मार दिया था; उसीके अनुसार यहां पर भी राष्ट्रों को कंधारी (कंधार राजवंशज) लिखा गया है ।

गह क्रंत वंबल् फिले फलहल सूंडि ललवल् सज्जए ।
कमधां पमारां खग्ग धारा, भड़ उधारा भज्जए ॥९८॥

अर्थ:—कन्नोज राजवंशज राठौड़ों के चिन्ह उत्साहित होगए और उनकी सेनाएँ शत्रुओं पर टूट पड़ी। जितने भी लड़ने वाले वीर थे; वे सभी जोश में आकर युद्ध में सम्मिलित होगए।

उनके चमचमाते हुए भालों के प्रहार से शोणित का अथाह प्रवाह बह चला और यत्र तत्र हाथियों की सूंडें कटकर लटकने लगी। इस प्रकार राठौड़ों और प्रमारों के मध्य तलवार की धार से युद्ध छिड़ गया।

संनाह सब्बल् टोप फलहल् वदन विंमल् वच्चए ।
भीछ भुजाल कोप काल् ग्णहताल् रच्चए ॥
दल दले दीठं पिढ़ि पईटं तणह त्रीठ तज्जए ।
कमधां पमारां खग्गधारा भड़ उधारा भज्जए ॥९९॥

अर्थ:—वीरों के कवच, भाले, और सतेज-मुख पर शिरस्त्राण चमचमाने लगे। उन प्रचण्ड भुजाधारी वीरों ने, जो क्रोध में यमरुपी थे, लगातार शस्त्रप्रहार करना आरम्भ किया वे सेनाओं को नष्ट करते हुए दिखाई दिए। वे स्वयं युद्ध में प्रविष्ट होगए और उसी स्थान पर उनके अंग खंड २ होते दिखाई दिए।

दड़के दगंमा गंम गंमा संम समा सद्दए ।
डमरू डहक्के डौंडि डक्के, वाणि सक्क वद्दए ॥
रण तूर रढ़ियं गयँद गुढ़ियं गयण उढ़ियं गज्जए ।
कमधां पमारां खग्गधारा भड़ उधारा भज्जए ॥१००॥

अर्थः—घम घमाहट करते हुए दमामे (नक्कारे) बजने लगे और संमलो ने का प्रचुर नाद होने लगा। डमरू की डिम २ ध्वनि के साथ ही दौड़ती कूदती हुई सिकोतरियां (शाकिनियाँ डाकिनियां) पुकारने लगी। रण तूर्य बजने लगा, हाथी लुढ़कने लगे और वीर गर्जना से आकाश प्रतिध्वनित हो उठा।

नीसाण नद मेरि भद पंच मद पूरए,
वर धू बहक्के ढ़ोल ढ़क्के साद सक्के सूरए।
हूका हवाई तुपक ताई वेध धाई वज्जए,
कमधां पमारां खग्ग धारां भड़ उधारां भज्जए ॥१०१॥

अर्थः—नक्कारे आदि रणवाद्य पंचम स्वर में बजने लगे, वीरों के कटे हुए मुण्डों से आवाज होने लगी, ढोल और ढांके (छोटी धांगे) बजने लगे, घायल वीर कराहने लगे, हवा में फैली हुई धाणों की कुहुक और तुपकों की आवाज के साथ २ वीरों के वध किए जाने लगे तथा साथ ही शस्त्राघात की ध्वनि होने लगी।

मछराल मन्ने तेख तन्ने अन्न अन्ने आउधे,
होड़ वीर हक्क धक्क धक्कं सूर सक्कं साउधे।
तण तार तेख लगि अलेखं रुद्र रेखं रज्जए,
कमधां पमारां खग्गधारां भड़ उधारां भज्जए ॥१०२॥

अर्थः—मन के मतवाले वीर तैश (आवेश) में आकर एक दूसरे पर शस्त्र उठाने लगे। हुंकार करते और धकेलते हुवे वे प्रसिद्ध वीर सावधान होकर भिड़ने लगे। शत्रुओं के शरीर खड्ग द्वारा काट-कर उन्हें मोक्ष प्रदान करते हुए वे वीर अलख (ब्रह्म रूप बन गए। त्योरियाँ चढ़ाते हुए वे वीर साक्षात् रुद्र के समान प्रतीत होने लगे।

अड़िया अपारं सूर सारं मार मारं मच्चए;
कुंजरां क्रीसं हया हींसं सज्जगीसं सच्चए ।
वप्प विहारं वारपारं कलह कारं कज्जए,
कमधां पमारां खग्गधारां मड़ उधारां भज्जए ॥१०३॥

अर्थः—विपक्षी वीर मार २ शब्द उच्चारण करते हुए शस्त्र ग्रहण कर लड़ पड़े। युद्ध-भूमि में सुसज्जित हाथी चिंघाड़ते और घोड़े हिनहिनाते हुए घूमने लगे। कलह-कार्य (युद्ध) छिड़ने पर शस्त्र आरपार होकर वीरों के शरीर को विदीर्ण करने लगे।

वाणंत बाणे ताण ताणे पिंडि प्रमाणे पैसए,
अणिये अगार वाणि वारं गज्जभारं गस्सए ।
तूटे तोखार भिदि मर्मांर मार मार सज्जए,
कमधां पमारां खग्गधारां मड़ ऊधारां भज्जए ॥१०४॥

अर्थः—धनुर्धारी वीर बाणों को पूरी शक्ति से खींचकर चलाने लगे, जो लक्ष्य स्थान पर लगते ही शत्रुओं के अंग में प्रवेश कर गये। उस समय सेना के अग्रभाग में स्थित बड़े २ हाथी शराघात द्वारा विनष्ट किए जाने लगे और घोड़ों के अंग भी खंड २ होगए। घेवे गए वीर उच्च घोष करते हुए शस्त्राघात करने लगे।

विरदैत विन्ने थडिम विन्नै सूर तन्नै सौं चड़े,
गयणाग गज्जे वसुह वज्जे तजे खावां त्रिज्जड़े ।
कटि कँगल कोपर वोटि बगतर वड़े पाखर वज्जए,
कमधां पमारां खग्गधारां मड़ उधारां भज्जए ॥१०५॥

अर्थः—विरदधारी याने वाले(वेशभूषा)दोनों ओर के बड़े २ वीरों के शरीर में वीरत्व शोभा पाने लगा। इनकी भीषण गर्जना से पृथ्वी और आकाश प्रतिध्वनित होगए और वे वीर म्यान से तलवारें निकाल कर वार करने लगे, जिससे वीरों के बख्तर, शिरस्त्राण और घोड़ों की पाखरें कट गईं।

सो तीर तीर धीर धीर वीर वीर चिम्मलं,
भूपाल भज्जै जोध लज्जै अज्जा तज्जे महियलं ।
वज्जरं बोलै थाट ठेलै झाट झेलै झभझए,
कमधां पमारां खग्गधारां भड़ उधारा भज्जए ॥१०६॥

अर्थः—तीरों से तीर, धीरों से धीर; धीर से धीर टकराने लगे। उस समय मर्यादा छोड़ कर कोई भी राज-वंशज युद्ध से विमुख नहीं होना चाहता था। ऐसा करने से इनके वीरत्व में धब्बा लग जाने की संभावना थी। वे वज्र के समान गंभीर घोष करते हुए वीर समूह को धकेलते और युद्ध की टक्कर सहन करते थे।

राठोड़ रज्जा कलि सकज्जा सार सज्जा सिरहरं,
हूकलै हस्से धूक धस्सै सार नस्सै सौ सर ।
वंगलां कट्टै सुजड़ सट्टै जोध जुट्टै जज्जए,
कमधां पमारां खग्गधारां भड़ उधारा भज्जए ॥१०७॥

अर्थः—राठौड़ नरेश इस कलियुग में भी श्रेष्ठ कार्य के लिए शस्त्र से सुसज्जित होकर अपने मस्तक शिव को समर्पित करने लगे। वे वीर योद्धा हुंकार के साथ २ अट्टहास करते हुए विपक्षियों को धकेल कर युद्ध में प्रविष्ट होगए। उन्होंने अपने शस्त्रों द्वारा शत्रुओं के बाणों काट दिया। तथा हाथ में कटारें ग्रहण कर निकट से ही भिड़ कर कवचों को काटते हुए योद्धागण परस्पर यम तुल्य होकर जूझने लगे।

सिरदार सब्बल,वे महाबल, करे कंदल कत्थए,
फर जिरह फूलिय हिये हूलिय सकल कुलिय सत्थए ।
तिख धार त्रुट्टा वप विछुट्टा वखे चुट्टा वभ्भए,
कमधां पमारां खग्ग धारां भड़ उधारां भज्जए ॥१०८॥

अर्थः—दोनों ओर के बलवान क्षत्रिय विनाशकारी ख्याति प्राप्त करने लगे। उनकी भुजाओं के साथ २ कवच भी फूल गए। उन सब सब कुलीन साथियों के हृदय में एक दूसरे के विपक्षी शत्रु चुभने लगे। इस प्रकार उनके शरीर तीक्ष्ण (खड्ग) धारों से कट गये, उनकी आत्मा का शरीर से विछोह होगया, इसप्रकार वे योद्धा तत्काल ही सांसारिक कष्ट (त्रिताप) से मुक्ति पाने लगे।

हँसराज हैमरि प्रचँड पक्खरि घेर घुम्मरि घत्तए,
असवार अगे जोध जंगे रणह रगे रत्तए ।
सादूलि सारे धड़छि धारे अरि अपारे अज्जए,
कमधां पमारां खग्गधारां भड़ उधारां भज्जए ॥१०९॥

अर्थः—उसी समय वीर शार्दूल प्रमार ने अपने सुसज्जित हंसराज नामक प्रचंड घोड़े का बढ़ाकर शत्रुओं के चारों ओर चक्कर लगाना प्रारम्भ किया और जितने अश्वारोही योद्धा रण क्रीड़ा में पारंगत कहे जाते थे, उन्हें अपनी शस्त्रधार से काट दिया। इस प्रकार उसने असंख्य शत्रुओं को वीरगति प्रदान की॥

भूपाल भूपं कलह कूपं सेल खूपं सेलयं,
असिमरे असिमर फरे वड फर खँजरि खजर खेलयं ।
मिलि हत्थ मत्थे सूर सत्थे वत्थ वत्थे वभभए,
कमधां पमारां खग्ग धारां भड़ उधारां भज्जए ॥११०॥

अर्थः—युद्ध में क्रुद्ध होकर नृपति से शेलधारी शेलधारी से, खड्ग धारी खड्ग धारी से, फरी (छोटी ढालें) रखने वाले, बड़ी फरी (ढालें) रखने वाले से और खंजर धारी खंजर धारी से, जूझ कर हाथ से हाथ और मस्तक से मस्तक भिड़ाते हुए गुत्थम गुत्था होकर समान हो गए।

पल चार पल डल गिध्धे अघ्घल जुड़ि विधाला जुत्थए,
अच्छरा वर वरि सूर समहरि मंन्न रलियां मन्थए।
वीरं वेतालं रुद्र जालं रुंड मालं रज्जए,
कमधां पमारां खग्ग धारां मह उधारां भज्जए॥११॥

अर्थः—गर्व से भयानक वीरोंके जूझ पड़ने पर आमिष भक्षकों ने मांस के अपार टुकड़ों का भक्षण किया अप्सराओं नेवी रोंके साथ वरण किया। जिससे उनके मन प्रसन्न होगए। वेताल वीर नर—रुण्डों के साथ और रुद्र मुण्ड-माला से सुशोभित दिखाई दिए। इस प्रकार राठौड़ और प्रमार वीरों ने खड्गधार द्वारा पुराने बदलेका निपटारा किया।

॥ कवित्त ॥

जिके कमँध जोधार, समथ संसार सजाणँ।
जिके कमँध जोधार अमिथि गिरमेर प्रमाणँ।
जिके कमँध जोधार, आप वह कहे न अक्खे।
जिके कमँध जोधार, गीति मोटा अँगि रक्खँ।

हणि खाग ग्रहे पांचाहरै, गहकरि अण भंग गजिया।
संग्राम समथ माला सुतनि सिंहि सादूलै भंजिया ॥११२॥
(र० आडा महडू[१])

अर्थः—पंचायण के पौत्र और मालदेव के पुत्र शार्दूल प्रमार ने गर्जना की तथा तलवार उठाकर जो सामर्थ्यवान, संसार प्रसिद्ध, सुमेरु पर्वत के समान उन्नतकाय एवं अपने मुखसे अपने को बड़ा न कहने वाले होकर भी बड़प्पन रखने वाले अभंग राठौड़ वीर थे उन को दबा दिया और साथ ही कइयों को नष्ट कर दिया।

महाराणा जगत्सिंह (प्रथम) की

डूंगरपुर पर चढ़ाई।

॥ निसाणी ॥

ऊंडाला सुधबुध दियण, समरूं सकजाई।
ईस पिता सिर ऊपरे, कितसाम जु माई॥
एकण द१ अनंत बुधि, किण पार न पाई।
येंट छोटे मोटे पगे, सबलो सकजाई॥
सोहे सीस सँदूर घण, लोदे लपटाई।
कध झबूके कानड़ा, लबा लहकाई॥

१ उक्त कवि शाह अकबर की सभा का कवि माना जाता है जिससे इसका रचना काल सत्रहवीं शताब्दि है। यह रचना जिस हस्त लिखित प्रति से लीगई है, उसका लिपि काल १७१६ है। जो आशिया सॉवलदानजी द्वारा भेंट की गई है और वह प्रति प्रा० साहित्य संस्थान राज० वि० विद्यापीठ में सुरक्षित है।

पाइल विहु खिलके पटा, मद महेक म माई।
सिर सोहंता भार वोहो, उज्जल उतमाई॥
चख नाना चवदे भवँण, चोहे चतुराई।
च्यार भुजा हँड चालवे, चाचल चपलाई॥
फरसी आवध फेरवै, तोड़न सिर ताई।
चाले तदि मू'से चढे, आतुर इधकाई॥
घूघर पायें धमधमे, रिमझम रणकाई।
तेतीसां अगवाण तूं, तो वडो वड़ाई॥
पहली हूँ लागूँ पगे, वरदे वरदाई॥१॥

अर्थः—शुभकार्य की पूर्ति के लिए सर्व प्रथम में गणेश का स्मरण करता हूँ, जो सूँड धारी है, जिसके पिता शिव, एवं भ्राता कार्तिकस्वामी हैं, जो एक दन्त कहलाता है, जिसका कोई भी पार नहीं पासकता ऐसी जिसकी अथाह बुद्धि है, शरीर की आकृति छोटी, परन्तु जिसके पैर बड़े हैं। वह कार्य साधन में सबल है। जिसका मस्तक विशेष रूप से सिन्दूर द्वारा चर्चित है, जिसके कन्धे पर लम्बे२ कान हिलते हुए हैं, कन्धों के पीछे जिसके दोनों ओर लटें (बाल) लटकती हुई हैं, जिनसे सौरभ फैल रही है। जिसके सिर पर उज्वल एवं भारी छत्र सुशोभित है, छोटे चक्षु होते हुए भी जो चौदह भुवनों को चातुर्य से देखता रहता है, जिसकी चपल चार भुजाएँ हैं, जो शत्रुओं के मस्तक खंड २ कर देने के लिए कुठार घुमाता रहता है और द्रुत गति से विचरण करते समय वह अपने वाहन मूसे पर सवार होता है, जिसके पैरों में घुंघरु रिमझिम बजते रहते हैं, जो तैंतीस ही करोड़ देवताओं का अग्रगण्य है। ऐसे वरदायक गणेश के चरण स्पर्श करता हूँ। वह मुझे वरदान दे।

(उदयपुर) में आ एकत्रित हुए। रानियों ने भी महाराणा के चरण स्पर्श किए। और महाराणा ने छोटे बड़े राज्याश्रित एकत्रित हुए उन्हें बुला उनके कन्धों को थपेड़ कर संतुष्ट किया। दीन दुःखियों को दान दिया गया और कैदियों को छोड़ दिया। यह पंच भौतिक शरीर कच्चे घड़े की तरह है, अतः कोई भी उपचार सार्थक नहीं हुआ। गिनती मात्र के श्वास, जो शेष थे, उन्हें रात दिन में पूर्ण कर अन्त में हाथी, घोड़े प्रासाद और सम्पत्ति आदि यहीं छोड़ कर वि० सं० १६८४[1] माघ शुक्ल १२ बुधवार को महाराणा ने अपनी रानियों के साथ स्वर्ग प्रयाण किया।

आया पिंडत जोतिसी, सिंघासन आणे,
सुभ वेलां मोहरत सखर, जो अधकी जाणे।
दोलत वरते दस गुणी, खाणे पर दाणें,
माल मोहरा मेलिया, मोंजाई माणे॥
ठाम ठाम बांध्या चरे, एराकी ठाणे,
घणा हसत माता घुमें, आड़े आडाणे॥
दूसामण दरगे चढे, जो बड़े वखाणे,
एकां मारे लीजिये, पालीजे पाणे।
ठाम ठाम हिन्दू, तुरक, थरहरिया थाणे,
चकतो मन में चमकियो, कागले पचाणे।
राणो मोटो जगतसिंग, चाढणे चराणे,

---

१. जगतसिंह के देहान्त का यह वि० सं० 'वीर विनोद' और 'उदयपुर राज्य का इतिहास से ठीक मिलता है।

पुनवत मोकल दूसरो, आपाणे पाणे ।
टीले बैठो जगड़ साह, छत्र मोटा ताणे ॥६॥

अर्थः—शुभ मुहूर्त को जानने वाले पंडित एवं ज्योतिषियों ने मिल कर महाराणा जगतसिंह[1] को सुसज्जित सिंहासन पर बैठाया। महाराणा जगतसिंह के शासन में दस गुना द्रव्य, सामान, स्वर्ण मुद्राएँ और अन्न दान के निमित्त एकत्रित कर दिया जाता था। हय शाला में इराकी घोड़े रातिब (चन्दी) पाते और गज शाला में झूमते हुए मतवाले हाथी सुशोभित थे। यदि उस महाराणा के दुर्ग (चित्तौड़) पर प्रशंसा करता हुआ कोई चढाई करना चाहता तो उसे मार दिया जाता या पीस दिया जाता था।

हिन्दू और मुसलमान ही क्या, सभी अपने २ स्थान पर रहते हुए (राणा जगतसिंह) के आंतक से कम्पित होते थे। महाराणा जगतसिंह के सिंहासनासीन होने की सूचना पाकर बादशाह भी भयभीत हो गया। वह राणा सभी राजाओं में बड़ा और अपने राणापन को ऊंचा उठाने वाला था। पुण्य एवं बल में वह दूसरा मोकल था।

ऐसा प्रतापी महाराणा जगतसिंह भारी छत्र धारण कर अपने पूर्वजों के सिंहासन पर सुशोभित हुआ।

कुल छत्रीसां करि मतो, हिव टीको कीजैं ।
सोना रूपा हाथियां, आणे मो दीजैं ॥

---

१. महाराणा जगत्सिंह का जन्म वि० सं० १६६४ भाद्रपद सुदि २ शुक्रवार को हुआ था और गद्दी नशीनी वि० सं० १६८४ के फाल्गुन में और राज्याभिषेकोत्सव वि० सं० १६८५ में हुआ।

दया करै जो वै दियै, सो आपण लीजै ।
जगदीसर मोटो किया, जां होड़ न कीजै ॥
विसहर वीसन रजिया, नान्हा न गणीजै ।
काका बाबा पग वड़ा, तह चाल चलीजै ॥
छत्र थकी अलगा रहै, तेता नर छीजै ।
गढ हेकीका रा धणी, कुण ग्यान गिणीजै ॥
मोटा मोटा ही वनै, छुधा सेवीजै ।
तूठा ठाकुर होइये, मोहो रूठ मरीजै ॥
जिण रै हीयै भ्रम नहीं, सो नर किम धीजै ।
पाहण पाणी में रहे, भीतर नहिं भींजै ॥
स्रवणी रो सत रंधियै, विण छार न सींजै ।
किणम स्रवीणा वागिया, कमाण सुणीजै ॥
पूंजा पड़िया ही पखै, कूही पत्तीजै ॥७॥

छत्तीस ही कुल के श्रेष्ठ क्षत्रियों ने एकत्रित होकर यह मंत्रणा की, कि महाराणा के राज्य-तिलक समारोह में हमें स्वर्ण, रौप्य, हाथी आदि भेंट में देना चाहिए और उसके उपलक्ष में वे जो कुछ भी हमें दें उसे ले लेना चाहिए। ईश्वर ने जिसे बड़ा बना दिया उसकी बराबरी करना अच्छा नहीं।

जिस पर हरि और हर प्रसन्न है, उस (महाराणा) को सामान्य पुरुष नहीं समझना चाहिए, यदि उसी राजवंश में ही कोई बड़ा हो तो भी पूर्व-रीत्यानुसार छत्र धारण करने वाले से सम्पर्क रखना चाहिए, क्योंकि उससे दूर रहने वाला कष्ट उठाता है। यों तो प्रत्येक दुर्ग पर राजपूतों का ही अधिकार होता है, जिसकी गणना नहीं की जा सकती।

किन्तु बड़ा वही है जो बड़े को बड़ा समझता और सेवा करता है। स्वामी के प्रसन्न होने पर जागीरदार होना और रुष्ट होने पर मारा जाना सम्भव है। जिसके हृदय में स्वामि-धर्म नहीं उसका कौन विश्वास करता है? (निष्ठुर हृदय ऐसे होते हैं) जैसे पत्थर जल में रहता है, फिर भी वह जल से तर नहीं होता। अतः यवनों से सम्पर्क रखने की इच्छा रखने वाला सदा निंदित कहा गया है। परन्तु जिस प्रकार मरवणि (वस्तु विशेष) बिना क्षार (सज्जी) के नहीं पकता, इसी प्रकार रावल पूंजा पतित होकर ही राणा का पक्ष ग्रहण करेगा, परन्तु ऐसे व्यक्ति का विश्वास नहीं किया जा सकता।

पूंजो मुगलां ई पछै, उस करवा आयो।
मिण माणक हीरा रतन, लम कछु न लायो॥
वले चोहटे आवता, नीसाण वजायो।
जाण पवण वाजंतड़ां, डूंगर डवलायो॥
दीठो दरसे आवतो, अममान अमायो।
बैठो आवे मामहो, बोले न बुलायो॥
रुख जूठी दीवाण री, दीठां दुःख पायो।
जण ही कीधो लाड़लो, सो सरग सधायो॥
वेगो उठे बाहुड़ियां, पोले बरजायो।
दँड तो छत्रीसे पवण, तिण पापे छायो॥
दंड दियां बिण जा भो मती, दीवाण कहायो॥८॥

अर्थ—महाराणा कर्ण की मृत्यु पर शोक प्रदर्शित करने के लिए रावल पूंजा[1] सभी सामंतों के आने के बाद उदयपुर आया और राजतिलक के समय भेंट करने के लिए मणि माणिक, हीरे, रत्नादि कुछ भी साथ में नहीं लाया। इसके बाद उसने नगर के पास आकर नक्कारे बजवाए। यह देखकर महाराणा जगतसिंह इस प्रकार क्रुद्ध हुए मानों धधकते हुए पर्वत को पवन का संपर्क मिला हो।

वह विशेष अभिमान से युक्त, राणा की सभा में बिना बोले ही सामने आकर बैठ गया। इसके ऐसे अभद्र व्यवहार से महाराणा रुष्ट दिखाई दिए, जिससे वह दुःखी हुआ और अपने मन में सोचा कि महाराणा कर्ण, जो मुझे प्यार करते थे, स्वर्ग में जा बसे।

यह सोचकर वह सभा में से शीघ्र ही उठकर रवाना हो गया। राजद्वार तक ही लौटा था कि महाराणा की आज्ञा से उससे वहीं रोक कर कहा गया कि छत्तीस ही वंश के क्षत्रियों से राज्य-तिलक के अवसर पर जो कुछ लिया जाता है, वह तुम्हारे जैसे उद्दण्ड पुरुषों के ही कारण है। अतः तुम भी बिना दंड दिए अपने स्थान डूंगरपुर नहीं जा सकते।

---

१ ख्यात के अनुसार डूंगरपुर के महारावल पुंजराज (पूंजा) का विक्रमी सम्वत् १६६६ पौष सुदी १४ को राज्याभिषेक हुआ। महाराणा अमरसिंह ने कई वर्षों पर्यन्त युद्ध करने के पश्चात विक्रमी सम्वत् १६७१ में बादशाह जहाँगीर से सन्धि की। बादशाह ने महाराणा प्रताप और अमरसिंह के समय शाही अधिकार में लिए हुए सब प्रान्तों को तथा डूँगरपुर, बांसवाड़ा देवलिया आदि कुछ इलाके भी लौटा दिये। महाराणा जगतसिंह ने शाही फरमान के अनुसार डूँगरपुर, बांसवाड़ा और देवलिया को अधीन करना चाहा और अपने मन्त्री अक्षयराज कावड़िया को सेना सहित डूँगरपुर भेजा महारावल पुंजराज पहाड़ों में चलागया।

वलतो रावल बोलियो, हूँ नहँ छूँ बाई ।
पेलां कांठा री पर्ग, मति चींतो काँई ॥
म्हेतो करता चाकरी, मांहरी बडाई ।
म्हे थें सरखें राजने, भायां रा भाई ॥
रावल राणा हेक घर, वलि पगे बडाई ।
राणा री आगे लगे, वरते ने छाई ॥
दोप नहीं दीवाणनें, तीरें सुखदाई ।
काचा मेवाड़ा फटरू, सांभलां सघाई ॥
तोरी धरती में रहे, काढ़ियो नजाई ।
ढ़ड ले मो पूँजा कनो, श्राही अधकाई ॥
सवला कदे न लेखवे, नीपांन मगाई ।
आतो दीसे आसनो, छक पगड़ो आई ॥
ये घोड़ा भड़कूदणा, ये ऊँडी खाई ॥६॥

अर्थः—यह सुनकर रावल पूँजा क्रुद्ध होकर बोलाः—मैं स्त्री नहीं, पुरुष हूँ, मेरा प्रान्त अलग ही है, उस ओर क्रूर दृष्टि से क्यों देखते हो। मैं महाराणा की सेवा करता था, इसे मेरा बड़प्पन मानना चाहिए। वैसे आप और हम सगोत्रीय भाई हैं। रावल और राणावंश दोनों एक ही घर है, फिर भी हमारा वंश बड़ा माना जाता है। महाराणा की हम पर सदा कृपा रही है और वे हमारे लिए सर्वदा सुखदाई रहे हैं अतः उनका अंश मात्र भी दोष नहीं, परन्तु उनके पास व्यर्थ और तथ्य हीन विचार रखने वाले (व्यक्ति) रहते आए हैं।

स्तंभ सदा पृथ्वी में गड़ा रहता है उसे निकाला नहीं जा सकता । निकालने पर मकान पृथ्वी पर टह जाता है, इसी प्रकार मैं भी

मेवाड़ के लिए स्तंभ ही हूँ), फिर भी आप मुझ से दण्ड चाहते हैं, यह आपकी विशेषता है। सत्य यह है, जो बलवान होता है, वह सम्बन्ध की ओर लक्ष्य नहीं करता (नहीं देखता)। तराजू में जिस ओर तोले (बाट) रखे रहते हैं, उस ओर का पलड़ा झुकता है, तब वणिक उस पलड़े को ही पकड़ कर सहारा देता है (अर्थात आप अन्याय के पलड़े के ही आश्रयदाता हैं।)

आपके ये कूदने वाले घोड़े और सामन्त ही आपके लिए गहरी खाई रूप हैं (आपको ये दुर्गम पथ पर ले जाकर धकेलने वाले हैं)।

> पूँजे लिख्यौ दिवाण सूं, ऐ वायक वांचौ ।
> म्हें तो भूंडा मन्न का, नहि मेरो चाचौ ॥
> कीधी थांहरी चाकरी, नहीं कीधो काचौ ।
> थें टुकड़ा रा लोभिया, रुपिया में राचौ ॥
> रुपिया ही रोकूं नहीं, बोहो फाड़ो डाचौ ।
> हुई माटी है कछू, जाणी चौ जाचौ ॥
> घरि बाना घरि आंगणे, जाणो ज्यूं नाचौ ।
> स्याम उतर रो तापछे, हूँ मानस सांचौ ॥१०॥

अर्थ—रावल पूँजा ने महाराणा को लिखा कि आप मेरे लिखे हुए पर ध्यान देना, हम तो आपकी दृष्टि में बुरे हैं, परन्तु मेरा, चाचा (जिन्होंने राणा मोकल को धोखे से मार दिया) वैसे नहीं हैं। हमने तो सदा आपकी सेवा की है। असत्य (धोखे) को काम में न लेकर सदा सत्य का ही उपयोग किया है, परन्तु आप तो मुद्रा के लोभी और उसी में प्रसन्न रहने वाले हैं।

रुपया देने में भी जरा भी हिचकिचाता नहीं किन्तु आप तो विशेष स्वार्थ करते हैं। हम से कुछ बुरा कार्य हुआ हो तो उस पर विचार पूर्वक जांच करें। यह तो घर का ही माज बाज और घर का ही आंगन है इसमें मनमानी उछल कूद से क्या ? आप जब ससैन्य श्याम (सोम नदी को पार कर मेरे भूभाग में आवेंगे, तभी आप मुझे समझ सकेंगे, कि मैं वास्तव में वीर पुरुष हूँ।

चढ़िकर रावल चालियो, सगला जूं चावो ।
वाजत्रदारां यूं कहो, नीसांण बजावो ॥
कूड़ी फिर फिर वीनती, मति घणी कुहावो ।
देस धरत्ती सारखो, सारीखो दावो ॥
बापो काहीरो बडो, माही रो बावो ।
धवल मगीखे अंचल, जाणों त्यूं धावो ॥
तेल तिला में नीसडै, तिल गाडा तावो ।
देखे आया देसखे, के जोर दिखावो ॥
गोखे बैठा आपरो, के मगल गावो ।
पहेला घोड़ा हाथिया, गया, सुग पावो ॥
दंड लेवा उतावला, डूँगरपुर आवो ॥११॥

अर्थः—इस प्रकार महाराणा का कहला कर रावल पूँजा सवार देखते २ विदा हुआ और अपने वाद्य बजाने वालों को आज्ञा दी, कि विदाई का नक्कारा बजाएँ। विदा होते समय महाराणा को पुनः कहलाया कि अब आपके समक्ष नम्र वाक्य कहलाना व्यर्थ है, क्योंकि आपका और हमारा समान ही भू-भाग और समान ही अधिकार है।

रावल बापा केवल आप ही का पूर्वज नहीं था, अपितु हमारा भी था, आप जैसा चाहें वैसा करें, किन्तु आपके और हमारे पूर्वजों ने एक ही पवित्र अंचल से स्तन का पान किया है। तेल तिलों के तपाने (पीसने) से ही निकलता है, अर्थात् हममें भी सत (पुरुषार्थ) है, इस बात का पता युद्ध छिड़ने पर आपको लग सकेगा। हमने आपको पहचान लिया, अब आप हमें परखने के लिये शक्ति का उपयोग क्यों करते हैं!

गवाक्ष में बैठे २ मंगलगान कराने से कोई लाभ नहीं (स्वयं आपको सामने आना चाहिए)। पहले राज्यतिलक के समय हमारी तरफ से हाथी, घोड़े, वस्त्रादि भेंट में दिए जाते थे, अब इसकी आशा आपको नहीं रखनी चाहिए। यदि दंड लेने के लिए आतुर हों तो आप स्वयं डूंगरपुर पधारें।"

सांभलि राणो जगड़ साह, मन घणूं रिसाणो ।
रक्खे कुण दूजो खत्री, रुद्र रुपी राणों ॥
जाणक सायर आवियौ, आघाण उफाणो ।
आगो टीका दोड़ रो, देखियो आपाणो ॥
हुई चढा चढ ठाकुरां, तुरियां तँग ताणो ।
घोड़ोड़ा गय्थ माना तुरी, दो खाणों–दाणों ॥
किया विदा हेकण हुकम, सो साथ समाणो ।
सगला ऐकक मल्लहे, एकेक बिल्हाणो ॥
पाले गप्पासर तणे, थिर दीजो थाणो ।
डूंगरपुर री डूंगर्‌यां, ढाढीऊं ढाणो ॥
दंड दवा दस बरस रो, पूंजा सूं आणो ॥१२॥

अर्थः—रावल पूंजा के इस प्रकार कहलाने पर महाराणा जगतसिंह क्रुद्ध हो गया। ऐसा कौन क्षत्रिय है, जो उस रुद्ररूपी महाराणा का सामना करे! उसने राज्य तिलक के अवसर पर भेंट प्राप्त करने के लिए सेना सजवाई और उस समय वह ऐसा दिखाई दिया मानों समुद्र में तूफान आगया हो।

उसी समय घोड़ों के तंग खींचकर राजपूत सवार होने लगे, बहुत सी मुद्राएँ घोड़े और रसद सामान साथ में दिया गया। सभी सामंतों को कवच और घोड़े उपहार में देकर शीघ्रातिशीघ्र अपने साथियों सहित विदा होने की आज्ञा दी गई।

उन्हें कहागया कि डूँगरपुर के पर्वतों को ढहा कर गेफ सागर तालाब पर अपना थाना नियुक्त करो और बारह वर्ष का दण्ड रावल पूँजा से वसूल करो।

आयै रावल देस में, दिय लोक उचाले।
किया माथे बोडिला, उन्हाले काले॥
जे सापी का धोलहर, ढाहे के खाले।
राणा गेखी रुख तलां, जजू वे जाले॥
(ते) पूछे पंथी हींडता, ते जलने गाले।
थल छाया सूं भंजिया किम वेसे थाले॥
अँवली गती दईव री, सो कुण संभाले।
एकां चाढे मेर गिर, एकां निखराले॥
एकां आणे दीजिये, एकां ऊंदाले।
परपँच को दीसे नहीं, चाडिये अग पाले॥
चढिया दल मेवाड़ रा, कुण पाछा वाले।

तूटी बीज अकाम री, हाथा कुण टाले ॥
गरब करता राजव्यां, परमेसुर गाले ॥१३॥

अर्थः— उधर रावल पूंजा ने अपने भू-भाग (डूंगरपुर) पहुँच कर प्रत्येक ग्रामवासी को आज्ञा देकर गांवों को (महाराणा के भय से) जन रहित करवा दिया। भयंकर ग्रीष्म ऋतु में भी जनता को झोपड़ियों में निवास करना पड़ा। महाराणा के क्रुद्ध होने से बागड़ के कितने ही निवासियों को अपने धवल भवनों को छोड़ कर वृक्ष और लताओं की शरण लेनी पड़ी। वे अपने प्राणों की चिंता में घरों को भी भूल गये। और जब मकानों के ताले लगा कर भागते हुए, पथिकों से महाराणा की सेना के आने का हाल पूछने लगा तब पथिक कहने लगे कि अपने ही हाथों से बात बिगाड़ दी, वह कैसे सुधर सकेगी ईश्वर की गति विचित्र है, उसे कौन सभाल (जान) सकता है। वह ऐसा है कि एक को सुमेरु पर्वत के शिखर पर आसीन कर देता है तो एक को स्थानच्युत कर देता है।

महाराणा की सेना किसी स्थान पर महाराणा की दुहाई स्वीकार कराती है तो कहीं पर जन-रहित कर देती है। महाराणा के उग्र गजारोही, अश्वारोही तथा पैदल वीरों में छल छद्म का अभाव है। ऐसी मेवाड़ेश्वर की सेना को लौटाने की शक्ति कौन रखता है। ऐसा कभी नहीं देखा गया है कि आकाश से गिरी हुई बिजली को किसी ने रोका हो।

इस राजवशज रावल को अभिमान हो गया है अतः ईश्वर इसका गर्व अवश्य दूर करेगा।

देखो बीड़ो झगड़साह, अखैराजह दीधौ ।
लुलै शाह लागो पगां, सिर चाढै लीधौ ॥
रुख देखे परधान री, राणो—राव रीधौ ।
क्रत वचन सुँ वखे सुने, जाणे इम्रत पीधौ ॥
सो मण सौंजाई सरस, बाबरजो सीधौ ।
आगे कोइ गरखो रखे, कारज अधवीधो ॥
असो अखाड़े आदिलग, गिरपुर सूं गीधौ ।
कुल छत्रीसां-ढूं करक, सो साथे लीधौ ॥ १४ ॥

अर्थ—क्या आप सोचते नहीं, महाराणा जगतसिंह ने युद्ध के लिए अखयराज को बीड़ा दिया है। उस साह पदधारी (अखयराज) ने बीड़ा हाथ में लेकर, महाराणा के चरण स्पर्श कर उसे सिर पर चढ़ाया। इस प्रधान (अखयराज) को वीरतापूर्ण रुख देखकर महाराणा प्रसन्न हुआ और उसके कर्तव्य वचनों के सुनने से सुधा पान का सा आनन्द प्राप्त हुआ।

महाराणा ने आज्ञा दी, कि सेना में प्रतिदिन सौ मन खाद्य पदार्थ वितरित करते रहना, ऐसा न हो कि कार्य अपूर्ण रह जाय और भविष्य के लिए सेना में कमी आजाय ?

अखयराज डूँगरपुर के साथ होने वाले युद्धों में सदा उलझा रहने वाला था। अतः उसने छत्तीस ही गोत्र के क्षत्रियों सहित सेना साथ में ली।

चढि चढि फौज मेवाड़ री, चहूँ दीसां चल्ली ।
एक एक हूँती अधक, मल्ला हूँ मल्ली ॥

जलहलिया सातू समँद, धरती हलहल्ली ।
ओद्रक्के मन आगरं, धड़की गढ दिल्ली ॥
पाखर कधां ऊपरे, घोड़ां परि घल्ली ।
मुखतूली फुंदावल्यां, बिहूँ दीठ बगल्ली ॥
तोप चढाया सीस परि, जाणे ईस अवल्ली ।
चुहि दीसे थाना चमर, कम राग रंगीली ॥
आगे मोजां सागद्र, ओपिया असल्ली ।
भो थाणे दहुँवे दसा, सीसह करसल्ली ॥
संग चलो गोदावरी, खरेरें खल्ली ।
साथर घट्टा उपड़ी, निज पाड़े ठल्ली ॥
मोटा दूहविये नहीं, हेंगल अगल्ली ॥ १५ ॥

अर्थः—उस समय मेवाड़ की एक से एक उत्कृष्ट सेना चढ़ाई कर चारों ओर इसप्रकार बढ़ी मानो सातों समुद्र तरंगित हो उठे हों। उसके प्रयाण से पृथ्वी कम्पित होगई, आगरा नगर भयभीत होगया और दिल्ली भी धूजने लगी।

घोड़ों पर पाखरें डालीगई तथा घोड़ों की गूँथी हुई अयालों में दोनों ओर रेशमी फुंदे लटक रहे थे, उनके कंधों पर तोपें जुती हुई थीं, जिससे वे ऐसे लगते थे मानो त्रिनेत्र धारी शिव हों। उसी प्रकार अन्य घोड़ों पर चारों ओर चमर चल रहे थे। वे घोड़े ऐसे तने हुए थे मानों अनुराग (प्रेम) में छकी हुई कोई सुन्दरी हो।

कुलीन वीर हरावल (अग्रभाग) में उत्साह पूर्वक चलने लगे। दोनों ओर के थानों (सीमा रक्षक चौकियों) पर संघर्ष होने लगा। एक वीर दूसरे वीर से कहने लगा, कि गोदावरी (डूँगरपुर के निकटवर्ती)

तीर्थ स्थान पर अपनी त्वचा को भस्म कर देना चाहिए। उस समय अपने २ गिरोह में एकत्रित हुई सेना इसप्रकार चलपड़ी मानो समुद्र में तूफान आया हो, या घन घोर घटाएं उमड़ पड़ी हों। कवि कहता है, कि जिनकी अश्वारोही सेना सदा अग्रभाग में देखी गई हो, ऐसे बड़े वीरों से विद्रोह करना अच्छा नहीं।

उदियापुर थी हल्लिया, दल पात्र ऊपाड़े।
सकता चींडा सोनगरा, जुग जाड़ा जाड़े॥
सींधल मोल्की सदा, सपत तेज सवाड़े।
रूक-हथा मांह राठवड़, अवला अक्खाड़े॥
माहि चहुआण महाबली, अरि लियण अभाड़े।
रामसिंघ क्रममेण रो, रिणखेत रमाड़े॥
मद वेहतो गज मारियो, वदियो मेवाड़े।
किसनदास गोपाल रो, कलि अकल कहाड़े॥
मूंदे: रावत मानसिंह, पहेलां सत्र पाड़े।
झालो कन्ह झूझार झड़, झटका सत्र झाड़े॥
माहे माधो साम रो, चत्रगढ सिंघ चाढे।
दूदाउत ईसर दुरत, जाणे वाघ पछाड़े॥
कमँधज सांवलदास को, मल तेज वहाड़े।
डाकी नरहरदास रो, जसवंत जिम जाड़े॥
इंद्रभाण आगा लगे, पूंवार प्रवाड़े।
फरहर वाघो मांनसिंघ, गाला गल फाड़े॥
जसवंत माडा जसा, ताना सत्र ताड़े।

कूरम बेटो किसंन रो, जोगिणी जिमाड़े ॥
अगवाणी माटी अदो, गज-दसण उपाड़े ।
राठोड़ वड सुंरदास रो, दे साथ सुहाड़े,
अतरा सूं अयो आलो, नदि स्याम कगाड़े ॥ १६ ॥

अर्थः— उदयपुर से महाराणा की सेना-कदम-बढ़ाता हुई चल पड़ी। उस सेना में गुणों से प्रचण्ड वीरों के शिरोमणि कहलाने वाले शक्तावत, चूंडावत, सोनगरे और सवाया तेज रखने वाले सिंधल, सोलंकी तथा युद्धस्थल में तलवार ग्रहण करके टेढ़ी चलाने वाले राठौड़ वीर—

शत्रुओं से लोहा लेने वाले सबल चौहान, युद्ध क्रीड़ा से हाथी को मारने वाला स्वयं महाराणा द्वारा प्रशंसनीय कर्मसेन का पुत्र रामसिंह, एवं कलियुग में अलौकिक वीर कहाजाने वाला गोपालदास का पुत्र किशनदास,:—

शत्रुओं से सामना होते ही उसे पछाड़ देने वाला रावत मानसिंह, शत्रु सेना को शस्त्र झड़ी से काट देने वाला वीर कन्हा झाला, महाराणा को चित्तौड़ पर स्थापित करने वाला शामसिंह का पुत्र माधोसिंह, सिंह के समान शीघ्रतापूर्वक शत्रुओं को पछाड़ देने वाला दूदा का वंशज ईश्वरदास:—

विशेष बल और तेजधारी राठौड़ सांवलदास, नरहरदास के समान ही उसका पुत्र प्रचण्ड और भयानक वीर जसवन्तसिंह, प्रमारों की पूर्व ख्याति को प्रसिद्धि देने वाला इन्द्रभान, गर्जना कर अपनी पताका फहरा देने वाला मानसिंह:—

तेजधारी शत्रुओं को ताड़ना देकर यश का मण्डन करने वाला जसवन्तसिंह, योगिनियों को तृप्त करने वाला कछवाहे किसनसिंह का

पुत्र वेरीशाल (या वेरीसि) हाथियों के दांतों को उखाड़ देने वाला वीरों में अग्रणीय भाटी उदा (उदोतसिंह), सेना के अग्रभाग में रहकर साथ देने वाले राठौर सुन्दरदास आदि थे।

उपरोक्त वीरों को साथ में लेकर अक्षयराज सोम नदी के किनारे पहुँचा।

> नोत्या आया पाहुणा, सुण रावल् धूंजे ।
> धूजी वागड़ री धरा, दिखण पण धूजे ॥
> दल बल् को दीसै नहीं, देखे कुण दूजे ।
> रावल् यूहीं रलतले, कांइ सरे न सूझे ॥
> तुटी नाड़ी हाथ सूं, ऊपरि कंठ ऊजे ।
> पर दल् चहुवाणा पखे, नर कोई न नूजे ॥
> स्याम उतरसो ठाकुरां, सिर पड़िया सूजे ॥ १७ ॥

अर्थः—युद्ध के लिए निमन्त्रित महमानों (महाराणा के वीरों) को अपने यहां आये हुए सुनकर रावल धूंजा और उसका वागड़ प्रान्त एवं दक्षिण तक का भू-भाग कंपित होगया। उस रावल को अपनी सैन्य शक्ति सामना करने योग्य दिखाई नहीं दी और दूसरा भी कोई साथ देने वाला दिखाई नहीं दिया। जिससे वह चिन्तित होगया और कुछ करते नहीं बना।

उसकी उस समय ऐसी दशा थी मानों हाथ की नाड़ी टूटकर प्राण कंठगत होगए हों। अन्य कोई भी क्षत्रिय महाराणा (की सेना) से सामना करने को तत्पर दिखाई नहीं दिया। एकमात्र चहुवान वीर ही ससैन्य रावल के पक्ष में दिखाई दिए और चहुवान सूजा ने विपक्षियों को कहलाया कि हे वीरो! सोम नदी को तुम तभी पार कर सकते हो, जब मेरा सिर कट कर पृथ्वी पर गिर जायगा।

सूरजमल रावत सरस, एक वचन सुणीजै ।
खरो कहतां ठाकरां, मति कोई खीजै ॥
ऊभां धरती आपणी, लूटीजे लीजै ।
रजपूतां ने मेहणो, छत्रपत कांई छीजै ॥
एकां थी दूजी हुवे, नन कीजे तीजे ।
पोल चढे पतसाह री, पूकार करीजे ॥
दादा यक दादा लगे, भूंडा दीखीजे ।
यूं करता जाजे मरे, तो नरग पड़ीजे ॥
भिड़तां जुड़तां सामहां, लोही धड़ भीजे ।
परमेसर आगल गयां, आदर पामीजे ॥ १८ ॥

अर्थः—सूरजमल ने रावल से कहाः–"हे छत्रपति ! आप दुखी क्यों हो रहे हैं ?" मेरी एक बात सुनियेः-"सत्य बात कहने पर नाराज नहीं होना चाहिये। जीवित अवस्था में जिसकी पृथ्वी लूटी जाती हो ऐसा राजपूत निंदित माना जाता है।

महाराणा एवं आप में जो ऐक्य था, उसमें अंतर आगया है। अतः यह बात तीसरे के कान तक नहीं पहुँचनी चाहिए। यदि आप बाद बादशाह के द्वार पर जाकर पुकार करेंगे, तो निश्चय है कि निन्दा होगी, क्यों कि आप और महाराणा के पूर्वज अलग २ नहीं।

फिर भी इतना करने (बादशाह की शरण में जाने) पर मृत्यु तो निश्चित ही है। ऐसा करके नर्क में जाना अच्छा नहीं।

विपक्षी से सामनाकर शरीर को रक्तरंजित करना ही अच्छा है, जिससे स्वर्ग में जाने पर ईश्वर के समक्ष सम्मान प्राप्त होता है।

सूरजमल रावल् कना, आयो सिख मांगे ।
साथीखां सू पांच मे, ऊनागे खागे ॥
भली हुई आया कटक, ए माहरे मागे ।
चाढि एराकी चंपिया, रस लूथे लागे ॥
लांबा पंथ उलालिया, ऊलाले वागे ।
वहेता मीनी वड्डी, भिल तारे झागे ॥
घर कर सीर धणूणिया, धमक्या दल् थगे ।
वीर भांण लाला तणो, लग अंबर लागे ।
भ्रमणें मुख पैंतीस सु, पूछे घर पागे ॥
विण चहुवाणा मारिया, आगे कुण आगे ॥ १६ ॥

अर्थः—यह कहकर सूरजमल युद्ध करने के लिए रावल से विदा हुआ। उसने अपने समान उन्नत खड्ग धारण करने वाले साथियों से कहा, कि हमारा सौभाग्य है कि विपक्षी सेना भी युद्ध के लिए सजकर हमारे सामने आगई है। इस प्रकार कहकर वह साथियों सहित वीर रस में छक कर गया और घोड़े पर चढ़कर द्रुत गति से बढ़ा।

वे अपने घोड़ों की रासों को उठाकर लम्बी मंजिल पार करने लगे, उस समय उन घोड़ों के मुँह से झाग पड़ने से रास्ते तर होगए। घोड़े अपने मस्तक धुनते और आतुरता से कदम बढ़ाते हुए शत्रु सेना में प्रवेश करने लगे। उस समय लालसिंह के सुपुत्र वीर भाण ने अपने मस्तक को आकाश से लगा दिया और पैंतीस ही शाखा के शत्रुओं से कहने लगा:-"इस भू भाग की ओर सोच समझ कर ही कदम बढ़ाना चाहिए था। आप जानते ही हैं कि हम चहुवान वीरों के मारेजाने से पूर्व कोई वीर कभी डूँगरपुर (वागड़ प्रांत) में प्रवेश नहीं कर पाया है।

प्रत्थम सू हरि ऊठकर, गंगोदिक न्हायो ।
चरचे चरणादिक लियो, दलसीस चढायो ॥
बेटो पाछो थापड़ी, भुजभार भलायो ।
मलिया हीने सीख दे, मन मोह ममायो ॥
प्रथीराज मारो सुणे, यो होलो दुख पायो ।
मोनू या छेटी घणी हूँ कूड़ कमायो ॥
निज तापम हे नीसरो, छांडे मठ छायो ।
घर छल कुल छल स्याम छल मरवा कज धायो ।
सहेणाई सिधू करे, सब राग सुणायो ॥
घोड़ा जोड़ा छडिया, नीसाण घुरायो ।
पगे एकिके जिगन फल, मोटा म्रग पायो ।
सो वां माहे सात सूँ, अेकेक सवायो ।
करि जल हलता कूंत सूं, आणे कुंता जायो ।
जाणक जल चख बद्दले, घणि दरस दखायो ।
सुजड़ो कटकां सांमहो, ओघे जूं आयो ॥२०॥

अर्थः—प्रातः काल निद्रा से जगने पर गंगाजल से स्नान किया और ईश्वर की पूजा की, चरणोदक लेकर शत्रु सेना पर आक्रमण किया। अपने सुपुत्र को पीछे का भार सौंप विदा किया, हृदय से प्रेम करते हुए अपनी सती-स्त्रियों को भी शिक्षा दी।

सूर्यमल ने सुना कि स्वपक्षी पृथ्वीराज नाम का वीर मारा गया, जिससे वह अत्यन्त दुःखी हो कहने लगाः—"कि हम साथ २ मृत्यु को प्राप्त नहीं हुए, इसमें मेरी तपस्या की कमी है।" यह कह कर वह इस प्रकार चल पड़ा मानों कोई तपस्वी अपने बसाए हुए आश्रम को निर्जन बनाकर चला जाता है।

पृथ्वी, वंश और स्वामी का रक्षक वीर सूरजमल जब मरने के लिए चढ़ा, तब सबको शहनाई में सिन्धुराग सुनाई देने लगा। नक्कारे बजवाकर बाजी मारते हुए घोड़े बढ़ाए गए। उन्होंने उस महान पर्वकाल में कदम २ पर यज्ञफल प्राप्त किया। उसके सौ वीरों में से सात साथी एक से एक सवाये थे। चमचमाता भाला उठाता हुआ वह वीर सूजा ऐसा दिखाई देता था मानों कुन्तीपुत्र (अर्जुन या भीम) हो। शत्रु-सेना में प्रवेश करता हुआ वह ऐसा दिखाई दिया मानों संसार का बहुरूपी सूर्य नररूप धारण कर उदय हुआ हो।

ऊले दल असैंराज रे, हुइ सल्हे सझाई ।
ठोर दमामा ठामि ठामि, नीसाणे ठाई ॥
धणी आपो आपणे, भोमली भिभाई ।
जोध जरद जूसण जड़ी, जोगंद्र जिसाई ॥
घापी टोपी फरहरे, देवल धूज दाई ।
बांधे कोर बराबरी, के कहूँ बड़ाई ॥
असु चढ़िया भड़ अक्खिया, जम रुक्ख जिसाई ।
जाणक सावण री घटा, अति उनमी आई ॥
बाँका ग्रख नै बोलिया, इके बरदाई ।
आदी डोडी बरछियां, कन सूरां छाई ॥
सगला ही सारीखे मने, भड़ लियण भलाई ।
जगदीसर पैदा किया, धर लियण पराई ॥
आया आमा-सांमहा, डाई घूंडाई ।
सूजो मूंढे बोलियो, मति गियो मगाई ॥

माँझी आवे मोह चढे, सांची दीसाई ।
हुइ तिमड़ी कहे जो सकी, अखैराज सगाई ॥
वरछी तरछी वोह थी, सुजड़ी कर साही ।
मोही चढे रावत मानसिंघ, भल मार मचाई ॥
धीवी डाडर सामही, नहुँ पूठि दिखाई ।
पड़ते सूजे पाड़ियो, दामोदर दाई ॥
पछे घमा घम आपरी, घाई ग्रध्धाई ।
लोथ पांच दस लड़थड़े, जू मूढे आई ॥
भल थोड़ी डाकण घणी, फूजो ए घाई ।
वागड चहुवाणा तणी, या वड़ी वड़ाई ॥
सूजे आवे सांभ ने ली लोह लड़ाई ॥ २१ ॥

अर्थः—इधर विपक्षी सेना में अक्षयराज के साथी महाराणा के वीरों ने भी कवच धारण किये और जोरसे नक्कारों पर डंके पड़ने लगे। दोनों ओर के वीर अपने २ बल पर एक दूसरे की सेना को भ्रमित एवं विचलित करने लगे। कवच कस कर जोश में आए हुए योद्धा योगीन्द्र से दिखाई देते थे टोप पर हिलता हुआ तुर्रा इस प्रकार सुशोभित हो रहा था मानों देवालय पर ध्वज फहरा रहा हो। उन वीरों ने कुशलता पूर्वक सेना को पंक्ति बद्ध किया, उसकी प्रशंसा कहां तक की जाय ? अक्षयराज के आधिपत्य में यम रूपी महाराणा के सामन्त अश्वारूढ हो इस प्रकार बढ़े मानों, श्रावण की घटा उमड़ पड़ी हो। उन बांके विरुदधारी वीरों ने वृषभ तुल्य वीरों को भयातुर कर दिया। उन वीरों ने आड़ी टेढ़ी बर्छियों से रणांगण को ढक दिया। वे सभी सामन्त युद्ध में यश प्राप्त करने के लिए एक-मता थे, ईश्वर ने उन्हें

पराई भूमि को अधिकार में करने के लिए ही उत्पन्न किया था। अपनी २ बाजी लगाते हुए दोनों ओर के वीर एक दूसरे से सामना करने लगे। उस समय सूर्यमल कहने लगा:—"हे वीरों! आपसी बन्धुत्व और सम्बन्धी का पक्ष नहीं करना चाहिए। प्रमुख वीरों का यही कर्तव्य है कि एक दूसरे से ईमानदारी से सामना करें। अक्षयराज और उसके नियंत्रण में रहने वाले वीर जैसा जो भी युद्ध करें वैसा कहने में संकोच मत करना।" यह कहकर वीर सूर्यमल ने लम्बे और तिरछे वार करने के लिए हाथ में तलवार एवं बरछी ग्रहण की। उसका सामना करते हुए रावत .मानसिंह ने अच्छा वार करना शुरू किया। उसने पीठ न बतलाने वाले वीर सूर्यमल के वक्षस्थल पर कटार भोंक दी, फिर भी वीर सूर्यमल ने पृथ्वी पर गिरते २ दाव लगा कर दामोदर नामक व्यक्ति को धराशायी कर ही दिया। वीर सूर्यमल के धराशायी होने पर युद्ध स्थल में शस्त्राघात की घमघमाहट छा गई जिन पांच हम वीरों ने सामना किया उन सभी वीरों का लोथें जमीन पर तड़फड़ाती हुई दिखाई दीं। महाराणा के उन विशेष वीरों के सामने बागड़ प्रान्त के थोड़े से वीर ऐसे दिखाई देते थे मानों अधिक डाइनियों के सामने थोड़ा सा ही भक्ष्य पदार्थ हो—फिर भी उन थोड़े-से वीरों ने बहुसंख्यक वीरों को तृप्त कर (छका) दिया। उन चौहान वीरों की विशेषता है, कि बागड़ प्रदेश की रक्षा उन्हीं पर निर्भर रही, और इसीलिये सूर्यमल ने सामना करके लोहा लिया।

सिर सूजारे पांवदे, दलै देस पधारो।
अेह गामा अेही नगर, लूटो कांइ मारो॥
अेही घोड़ा हाथियां, गोहूं जव चारो।
माड़ो आवे कुण कहे, म्हाँरो के थांरो॥
रजपूतां री रीत या, मरहो के मारो।

धर यण करता कल्लहे, जियो कांइ हारो ॥
परमेसर पैदा किया, आपण ये वारो ॥
वड़ा वड़ेरा ठाकुरां, आवतां विचारो ।
धणियां ऊभां लीजियें, तो किण रो सारो ॥ २२ ॥

अर्थः—मरते समय सूर्यमल ने कहा. कि हे मेवाड़ी वीरों ! मेरे मरने पर ही आप मेरे मस्तक पर पैर रख कर वागड़ प्रान्त में प्रवेश कर सकते हो। गांवों और नगरों को लूटो या नष्ट करो, अपने हाथी और घोड़ों द्वारा यहाँ की खेती उजाड़ सकते हो। अब मेरा और तेरा कह कर रोकने वाला वागड़ भूमि में कोई नहीं है। राजपूतों का धर्म है, कि वह मार कर ही मरे। यह पृथ्वी कलह का कारण है, इसके लिए कोई लड़ कर विजयी हुआ है, तो कोई पराजित होता आरहा है। ईश्वर ने हमें उत्पन्न किया है तो हमें भी समय का सदुपयोग करना चाहिए। हे वड़े २ वीरों ! यह बात विचारणीय है, कि पृथ्वी का स्वामी जीवित हो और उससे पृथ्वी छीन ली जाय, तो दूसरे के यश की क्या बात है ?

आवी फौजां चहुँ दसां, डूँगरपुर दौली ।
चढि चढि मेवाड़ी कटक, धरतो सो चौली ॥
ओडण छाती ऊपरे, तेगां कर तोली ।
अखेराज वोपे घणो, सागीलां टोली ॥
पूंजो काला नाग जूं, रहो बांटे नोली ।
अक्खे दीठी आपणी, पड़तां सिर गोली ॥
मूवा वल न आवजे, धरती सिर धोली ।
जीवंता धरती धणी, आ उधम घोली ॥

मोढे मेल्हीं चार खूं, वे विग हिज बोली ।
रावल चल्या पुकार नें, कर कांखे झोली ॥
पूंजे गिरपुर मेलिया, धनपुर ज्यूं होली ॥ २३ ॥

अर्थः—सूर्यमल के मारे जाने पर महाराणा की सेना ने डूङ्गर पुर को चारों ओर से घेर वहाँ की भूमि को रक्त रंजित कर दिया। मेवाड़ी वीरों ने एक हाथ से ढालों को सामने करते हुए तलवारें उठाई। इस प्रकार अक्षयराज अपने समान ही वीरों की टोली में सुशोभित हुआ। उधर रावल पूंजा नोली नामक स्थान पर डट कर काले सर्प के समान शरीर मरोड़ ने लगा। उस समय अक्षयराज ने अपनी बन्दूक की गोली द्वारा पूंजा के सिर पर अघात होता हुआ देखा। वे वीर धन्य हैं, जो इस पवित्र भूमि पर मृत्यु प्राप्त करने के बाद पुनः नहीं लौटते। यह पृथ्वी ही उत्पादन का कारण है, जीविता वस्था में ही मनुष्य उसका स्वामी माना जाता है (मारे जाने पर दूसरा स्वामी कहलाता रहा है)। जिस प्रकार सोढाने चारखूं नामक स्थान को छोड़ नष्ट कराया। उसी प्रकार रावल पूंजा ने झोली को कांख में लटकाया और पुकार करने के लिए (बादशाह के पास) रवाना हुआ। उसने कुबेर की नगरी (अलका पुरी) तुल्य डूङ्गरपुर को अपने ही हाथों भस्म कर दिया।

चढिये डूंगरपुर लियो, पूंजाह पछाड़े ।
ऊना पेला भंफता, सो अंगां भाड़े ॥
च्यारूं दिसणो देखणो, लूटे लूटाड़े ।
धन्न पराया आपणा, सो हौलोक धपाड़े ॥
पोल हाट विच मालिया, ढाहे कांइ पाड़े ।
धणि ये उत्थल काथड़ी, फंफेड़ फाड़े ॥

बाले काला खंभ करि, सिर हरणा बेसाड़े ॥
काचा कहंता जे किया, साँचा मेवाड़े ।
चोखी पूंजा घरण ने, गिर ऊपर चाड़े ॥
पूंजा को बोलतो, जो दीओ दाड़े ।
बाड़ी बागन रूंखड़ा, व्हाखिया बढाड़े ।
झूले गेबामर रमे, बोहो गोठां झाड़े ।
गीत नवाड़ा नत नवा, बोहोला चूलाड़े ।
धर कुल धर धणियां सहेत, सहेन, सहे भला भुवाड़े ।
जस लेने आयो अखो, जग पुहिह बजाड़े ॥ २४ ॥

अर्थः—पूंजा के चले जाने पर इधर उधर कुछ विपक्षी शेष र उन्हें मेवाड़ी वीरों ने मार कर डूङ्गरपुर पर अपना अधिकार व लिया। चारों ओर लूट खसोट की गई, पराया धन अपने अधिक में लेकर बहुत से आदमियों को बांट दिया गया, दरवाजे, बाज़ा अट्टालिकाएँ आदि ढहा दी गई। बहुत से स्थानों को इस प्रकार उथ पुथल कर दिया मानों फटी गुदड़ी चीर दी गई हो। अच्छे २ मका को जला दिया और वहाँ के स्तंभों को काले कर हरिणों के बैठने स्थान जैसा (अरण्य-सा रूप दे दिया। रावल पूंजा, मेवाड़ वीरों को कच्चा (साहस हीन) कहता था, अतः मेवाड़ेश्वर ने डूङ्गरपु पर चढ़ाई करा कर सच्चे (साहसो) वीर सिद्ध कर बनाया। राव पूंजा को समझ को धन्य है।

वह अधिक बातें बनाता था, अतः उसे विलाप करना पड़ा, उसके यहाँ को वाटिकाएँ, बाग तथा वृक्ष उखाड़ दिये गये। महाराण के वीरों ने गेब सागर में स्नान कर वहीं पर भोजन, उत्सव आदि किया। उनके नित्य नूतन विजय गीत एवं प्रसिद्धयाँ पढ़ी जाने लगी।

महाराणा का मन्त्री अखयराज डूङ्गरपुर के भू भाग, राजवंश और वहाँ के रावल को भ्रमित कर संसार के कोने २ में यश प्राप्ति का गान कराता हुआ उदयपुर लौट आया ।

कवित्त

वागो पुड़ हैं भार, भिड़े डूंगरपुर भागा ।
पूंजो नें काढ़ियो, लोग दूजे पुड़ि लागो ॥
पातसाह सांभलो, वात नव दीप वखाणी ।
सबलो राणो जगड़, अखो सबलो अगवाणी ॥
झूलणा भला गुण कहे "विदुर"[1] भले सम्हीगत भाखिया ।
जीवत्त-पवाड़ा ताँह रा, सूरज सिस हर साखिया ॥२५॥

(रचः—विदुर)

अर्थः—अश्वखुर एवं तलवारें बजवाकर वीर गण भिड़े जिससे डूंगरपुर ध्वस्त होगया और रावल पूंजा को निकाल दिया गया। वहाँ की जनता अन्यत्र जाकर बसगई। यह ख्याति नवों खंडों में फैल गई और बादशाह को भी ज्ञान होगया कि महाराणा जगतसिंह एवं उसका प्रमुख मन्त्री अखयराज सबल वीर हैं। शुभ मुहूर्त में सुगम विदुर कवि ने इस युद्ध में सम्मिलित हुए वीरों का गुण झूलणा नामक पद्यों में किया। उनकी इस अमर ख्याति के साक्षी सूर्य, चन्द्र एवं भगवान शङ्कर हैं।

---

१. यह रचना श्री गिरिशंकर देव श्री की. एम. सी. एल. एल. बी. वैरिस्टर, थनेरा (मेवाड़) के संग्रहालय से प्राप्त हुई है। इसमें इसके रचयिता का नाम "विदुर" है। इसका लिपिकाल १०७१ व शिवन शुक्ला है। लिपिकार का नाम "रायचन्द पंचोली" लिखा है।

खिताब, पद और उच्च रावत-उपाधि पाई। (उस समय) सोलंकी शक्तिसिंह टोडा राज्य का रावत था, उसके नागरचाल के प्रांत को चूंडा ने साथियों सहित शस्त्र ग्रहण कर अधिकार में कर लिया।

दोहा

चूंडे नागरचाल रो, देसलियो महदाट ।
राजथान वेगम रच्यो, खगां पांण धर खाट ॥ १६ ॥
समत चवदे साखसो, वरस बांसठा बीच ।
वेगूं राजस बांधियो, चूंडे धार नगीच ॥ २० ॥
पनरा वरसां लग पछे, रावत कीदो राज ।
ये नव सुत मुंह आगले, सरब सुखू समाज ॥ २१ ॥
कंवर वड़ो निज कूंतलो, वंस भरकूकव मांह ।
कांधल दूजो क्रामती, वेठो पाट दुवाह ॥ २२ ॥

दोहा—

अर्थः—चूंडा ने नागर चाल के प्रान्त पर तलवार के बल से अधिकार कर वेगूं में अपनी राजधानी कायम की।

संवत् १४६२ में चूंडा ने (चित्तौड़ के) पास ही—वेगूं में अपनी राजधानी कायम की।

रावत ने १५ वर्ष तक राज्य किया। उसके शासन में समाज सुखी था। रावत के नौ पुत्र थे।

चूंडा का ज्येष्ठ पुत्र कुंतल था, जिसका वंश भरक गांव में है। दूसरा पुत्र चमत्कारी वीर कांधल था, जो चूंडा के बाद गद्दी पर बैठा।

कूंतल कांधल बय कँवर, भल सींहल भाणेज ।
सानुज सुर तेजल सही, (जे) सूरगड्ड आणेज ॥ २३ ॥

तेजसिंघ हड़ा सुतन, दिये लींबोदे गाम ।
मड़े मलाणों माकवूं, रधु कणेरो धाम ॥ २४ ॥

जेतसिंह चवथोज का, वंश कारोई बीच ।
अजे भोमिया राजवे, नजरां लख्या नगीच ॥ २५ ॥

चूंड सुतन मांजो मही, कह जण वंस कटार ।
जंपे कूंभलगढ़ जले, मांजावत हम्मार ॥ २६ ॥

अर्थः—कुंतल और कांधल—दोनो ही सिंघल राजपूतों के मानजे थे और तीसरा पुत्र तेजसिंह की संतान सूर्यगढ ठिकाने में है।

तेजसिंह के पुत्रों की संतान लींबोदे मे है। (इस उपरात) मलाणा के पास कणेरा गांव में भी है।

जेतसिंह चौथा पुत्र था, जिसका वंश अभी भी कारोई के बीच विद्यमान है और जो आज भी भूमिपति (भोमिया) कहे जाते हैं, यह आंखों देखी बात है ।

चूंडा का पांचवा पुत्र मांजा था। उसके वंशज कुंभलगढ़ के जिले में कटार गांव मे हैं। और मांजावत कहे जाते हैं।

सोरठा

सुतन छटो आमोह, वंस मचरड़ी बीच में ।
मारे आमत सोह, आसावत वाजे अजे ॥ २७ ॥

सह दाखे संसार, जेतो मांजो ग्रास जग ।
ग्रहूँ ग्रात हकतार, नानाणो वयलां सदन ॥ २८ ॥

यम सांभली ग्रठेह, सपतम रणधीरो सुतन ।
जिण रो वंस जठेह, काटूं दो वेगम कने ॥ २९ ॥

रासो ने रणधीर, भ्रात चुहाणां भाणजा ।
वाखाणूं सच वीर, ऊत गियो रासो ग्रनुज ॥ ३० ॥

(सोरठा)

ग्रर्थः—छठा पुत्र ग्रासा था, जिसका वंश भचरड़ी स्थान में है। ग्राज भी वह तलवार से ग्रनुरक्त होने से ग्रासावत कहा जाता है।

प्रसिद्ध है कि जेता, मोजा ग्रौर ग्रासा तीनों ही समान वीर थे, जिनका ननिहाल वयला (सभवतः–वहेला या बघेलां) के यहां था।

सुना जाता है कि, सातवां पुत्र रणधीर था, जिसका वंश बेगूं के निकट काटूंदा (गांव) में है।

रासा ग्रौर रणधीर–दोनों भाई–चौहानों के भानजे थे। वे सच्चे वीर थे। रासा निःसंतान ही रहा। (ग्रथवा रासा का, भाई रणधीर संतति हीन रहा)।

सौरठा

जेमल नवमो जांण, घर हाड़ां मोसाल गण ।
ऊत गियो कह वांण, दुरस कितां ग्रंथा पिकां ॥ ३१ ॥

विद विद वाखाणाह, लखूं मुखां ग्रग्गो लगे।
जुग सारे जाणाह यम चूंडारे नव कँवर ॥ ३२ ॥

(अंत) राव गियो सुरलोक, संमत चवदे सुतंतर।
बैठो पाट बीलोक, कुंतल छोटो कांधलो ॥ ३३ ॥
(जो), राज कियो हेकवार, वेगम पनरा वरस लग।
विद-विद जस विसतार, (पछे), राव गियो सुरलोक में॥३४॥

अर्थः—(चूंडा का) नवम पुत्र जयमल था, जिसका ननिहाल ...ों के यहां था। कई ग्रन्थों से यह स्पष्ट होता है कि वह संततिहीन ...रहा।

पहले से ही चूंडा का यशोगान कइयों के मुख से तरह २ से ...ता रहा है। (चूंडा के विषय में) सारा संसार जानता है कि, ...सके नौ कुंवर थे।

सं० १४७७ में रावत (चूंडा) के स्वर्गवासी हो जाने पर कुंतल ...। छोटा भाई कांधल गद्दी पर बैठा।

कांधल ने बराबर १४ वर्ष तक वेगूं स्थान पर राज्य किया और ...नेक तरह से कीर्ति फैला कर स्वर्ग वासी हो गया।

छंद निसाणी

चूंडा हंदे पाट चव, बैठो विरदाई।
कुंतल छोटो कांधलो, वाजीह सवाई॥
अरक उगम पूरब उटे, हेक साथ हुवाई।
मरनंद समुद्र भल, धोई, कस्ल कढाई॥ ३५ ॥
सुतन धनंतर समदरो, दुकियाण दे साई।
चूंडारो कांधल चुरम, वड पाट बेठाई॥
कुंभलगढ़ राजस करत, गायो विरदाई।
कुंभे वेगम आग्र कर, वाणान पैंवाई॥ ३६॥

अर्थ:— चूंडा की गद्दी पर कुतल से छोटा, परन्तु युद्ध बाजी लेने वालों में सवाया वीर कहलाने वाला यशस्वी कांधल बैठा (मानों) उसके पूर्व जन्म के भाग्य एक साथ ही उदय हुए हों! (तब कांधल को कोई २ नन्द तथा वसुदेव के गृह में उत्पन्न कृष्ण कहता था

कांधल को कोई दुनिया में समुद्र-पुत्र धन्वन्तरी के रूप में देखता था। जब (मेवाड़ का) ढाक स्वरूपी वीर कांधल गद्दी पर बैठा, त यशस्वी महाराणा कुंभा कुंभलगढ़ पर शासन कर रहे थे। उन्होंने वहां (बेगूं) जाकर एवं रावत को तलवार बँधाकर सब रस्म अदा किये

येतो कुरब समपाडीयो, (जीरी)किव, कह दिखलाई ।
दल् हरवल् वेठक सरे, सिधूर वगसाई ॥
सांकुर निजसाखत सहित, सोव्रन्न सजाई ।
कठी चोसर मोतियां, सर सोव जड़ाई ॥ ३७ ॥
श्रवण भूषण सार रो, श्रत्र हेम सजाई ।
अदके मोल् जड़ावरी, पूंचा पह पाई ॥
वगसे सरब मुरातवो, सह राजसु पाई ।
इते देस मझ ईडरयो, उठ भांण धाड़ाई ॥ ३८ ॥

अर्थ:—साथ ही (कांधल को) प्रतिष्ठा दी गई जिसका वर्णन कवियों ने किया है। (इसी प्रकार) सेना के हरावल भाग में रहना (सेना पतित्व), सामंतों के बीच (बैठने के लिये) उच्च स्थान, हाथी स्वर्ण-साज से सुसज्जित महाराणा का निजी घोड़ा, जटित कठाभरण (कंठी) मोतियों की माला—और

कर्ण-भूषण, सोने के अस्त्र-शस्त्र और अधिक कीमती जड़ाऊ पहुँचियां दी गई। इस तरह सभी प्रकार से राणा ने रावत को प्रतिष्ठा दी। उसी समय ईडर देश का भानुसिंह डाकू के रूप में उठ खड़ा हुआ।

लूटण लागो रेत लख, इम खबरां आई ।
सुणे खबर राणे श्रवण, लिय राव बुलाई ॥
धाड़ा पटके धाड़वी, कर रेत कुकाई ।
(इमे), कांदल जतन करावजे, कथ राण कहाई ॥ ३९ ॥

सिर हेकम चाढ़े अरज, (पाछी) कर जोड़ कहाई ।
तूज तणे तप तेज सूं, सह विग्रह विलाई ॥
इते इडर रा मांग री, द्रढ भाल दगाई ।
हय चढ़ कांधल हालियो, सज जंग सझाई ॥ ४० ॥

अर्थ—जब (मेवाड़ देश की) जनता के लुटने की सूचना महाराणा को मिली, तब राणा ने रावत को बुलाकर कहा कि, डाकू लोग डकैती कर रहे हैं और प्रजा में हाहाकार मच रहा है। हे कांधल ! इसलिये कोई उपाय सोचो।

रावत ने राणा के आदेश को मस्तक पर चढ़ाकर विनती की कि, (हे राणा !) आपके प्रताप के भय से सब विघ्न नष्ट हो जायेंगे। बाद में ईडर देश के भानु (डाकू) का पता लगवाकर युद्ध के लिये तैयारी की और घोड़े पर सवार होकर कांधल ने प्रस्थान किया।

धाड़ायत ऊपर धके, कर क्रोध कड़ाई ।
झक पकड़ पग गेपवों, (हे) मरदां मरदाई ॥
तूज जसां आगायतां, (ज्यामु), भागो किम जाई ।
समा सुणे कांधल वयन, दौड़ायत दाई ॥ ४१ ॥

उमगायो रंमा वरण, सुज जग मझाई ।
इत कांधल धाड़ायतों, त्रासाम वजाई ॥

रथ रोके दिनकर रुके, खग जंग लखाई।
मुंड माल धारण करण, उमियापत आई ॥ ४२ ॥

अर्थः- क्रुध होकर रावत ने डाकुओं का सामना किया और कहा कि, तलवार थामकर (युद्ध में) डटे रहने में ही पुरुषार्थ है, फिर तुम जैसे साहसी (युद्ध से) कैसे भाग सकते हो ? कांधल के वचन सुनकर वह डाकू (भानु) सामना करके दाव देने डट गया।

(उन दोनों के पारस्परिक) युद्ध की तैयारी, वीर-वरण के लिये रंभा (अमरा) को प्रेरित करने लगी। कांधल तथा लूटने वाले भानु का खड्ग-युद्ध देखने के लिये सूर्य ने अपना रथ रोक दिया एवं शिव भी मुण्ड-माला की आशा में वहां उपस्थित होगये।

ऊमदां धरां वरण, अप छर खड़ आई।
बेठ उभे बेवाण बीच, सुरलोक सिधाई ॥
सिव चंडी पलचर यतां, श्रव आस पुराई।
कांदल बार कैवाण हूँ, भंजे भाणाई ॥ ४३ ॥
(पछे), वाम कियो सुरलोक में, नृप दाद दराई।
अरथ धणी रे आवतां, अमता जगपाई ॥
तीरथ धारा जोक तन, कज स्याम कराई।
ओला नभ रवि ससि अते, अखियात रहाई ॥ ४४ ॥

अर्थः—वरण करने की इच्छा रखने वाली युद्ध में आई हुई अप्सरा ने भानु का वरण किया और उसे विमान में बिठलाकर फिर से स्वर्ग चलती बनी। (इस प्रकार) वीर कांधल ने अपनी तलवार से भानु को नष्ट कर शिव की, चंडिका की एवं आमिष भुक्षों (गिद्धादि) की इच्छा पूर्ण की।

बाद में कांधल भी (उसी युद्ध में) स्वामी के हित काम आया। (कांधल के निधन की) सूचना पाकर महाराणा ने प्रशंसा की। इस प्रकार रण-तीर्थ में मर जाने पर (कांधल की) कीर्ति, ख्याति पृथ्वी, आकाश, सूर्य और चन्द्र तक जा पहुँची।

कांदल रे च्यारू कंवर, रतन वडो रणधीर ।
नानाणो कमधज सदन, गुण नध सहज गँमीर ॥४५॥

रतन अनुज सींगह रघू. सिंग सुतन जुग साख ।
अदक जगो सांगो अनुज, मत्र सारो इम माख ॥ ४६ ॥

सींग अनुज डूंगर सुतन, गोगा थल पाखंड ।
खेम करण रो ऊत गो, मण घर रतनो मड ॥ ४७ ॥

अर्थः—कांदल के चार पुत्र थे। रतनसिंह सबसे बड़ा, रण मे धैर्य धारण करने वाला, गुणागार तथा सहनशील था। उसका ननिहाल राठोड़ों के यहां था।

रतनसिंह के सींगा (सिंह) नामक पुत्र हुआ। सींगा के जगा एवं सांगा (दो) पुत्र हुए। जगा से जगावत, तथा सांगा से सांगावत शाखा का (आगे चलकर) प्रादुर्भाव हुआ।

सींगा से छोटा भाई डूंगरसिंह था। इसकी संतान गोगाथल एवं पाखंड स्थान पर है। खेमकरण (डूंगरसिंह से छोटा) निःसंतान ही रहा। (तात्पर्य) कांधल के बाद उस गद्दी पर रतनसिंह सुशोभित हुआ जो मणिधर सर्प के समान तेजस्वी था।

वरस वियो पनग बचे, रावत पाट रतन्न ।
असमर कुंभ वंदायवी, आद सुजव किम मंज ॥ ४८ ॥

सोरठा

गडपत नांमे गांग, सुकरा नवो वसावियो ।
धणी रांण उणधांम, असमर कुंभ बंदावियो ॥ ४६ ॥

दोहा

जापरखां पत साज को आयो खड़ आगोह ।
पील्या खालज ऊपरे, वाहव जुध वागोह ॥ ५० ॥
धणी तणी कीधी फते, रतने जीती राड़ ।
आयो काम मेवाड़ रे, वेर्‍यां घड़ा विभाड़ ॥ ५१ ॥

अर्थः—वि० सं० १५०२ में रावत (कांधल) की गद्दी पर (जब) रतनसिंह बैठा, (तब) राणा कुंभा ने नियमानुसार सभी साज-बाज से तलवार बँधाई !

—:सोरठा:—

गढ़ पति (रतनसिंह) ने अपने नाम से, रतनगढ़ (बेगूं के पास) गांव बसाया। राणा कुंभा ने उस स्थान पर जाकर (रतनसिंह को) तलवार बँधाई।

—:दोहा:—

जब बादशाह जाफर खां बढ़कर सामने आया, तब रावत ने पील्याखाल स्थान पर प्रशंसनीय युद्ध किया।

रतनसिंह ने युद्ध करके विजय-श्रेय स्वामी (महाराणा) को दिया और आप स्वयं दुश्मन की सेना को काटते हुए मेवाड़ के काम आया ।

राण तणी अतह करण, करण बंदगी काज ।
धारा तीरथ चतधर्यो, रतन सिभव तजराज ॥ ५२ ॥

केवीवां हूरां कने, मेले भसत मझार ।
(पछे), राव गियो सुर लोकमें, बीजल भाट वजार ॥ ५३ ॥

रतन तणे दस ही कँवर, (जीमें) दूदो वडम उदार ।
हामाऊ पतसाह सूं, जूटो सँग जोधार ॥ ५४ ॥

चगता सूं चीतोड़ मझ, कँवर पदे नृप कांम ।
राण तणे आयो अरथ, नव खँड राखण नाम ॥ ५५ ॥

अर्थः—महाराणा की सेवा में मन लगाकर, रत्नसिंह ने राज्य-मद को त्याग दिया और युद्ध रूपी तीर्थ में अनुरक्त होगया ।

मुसलमान शत्रुओं को हूरों का वरण करा, बहिश्त (स्वर्ग) में पहुँचा कर रावत (रतनसिंह) तलवार चलाता हुआ स्वर्ग-लोक चला गया ।

रतनसिंह के दस कुंवर थे । सबसे बड़ा दूदा था, जो उदार तथा असि-संचालन में कुशल था और हुमायूं बादशाह से तलवार पकड़ कर (युद्ध में) भिड़ा था ।

युवराजपन में ही वीर दूदा, राणा के अर्थ चित्तौड़ में मुसलमानों से जूझता हुआ काम आया । (इस प्रकार) दूदा ने राणा की सेवा में काम आकर अपने नाम को नवों खंडों में अमर कर दिया ।

रतन पाट बेठो रघू, दूजो सांई दास ।
दास खंगार सुर दाखऊ, जुग जुग कमो उजास ॥ ५६ ॥
पुणे वीर सत पंचमो, हे जग वंस इमार ।
पीपरोदो वेगम पटे, ज्या सादर अगमार ॥ ५७ ॥

ऊत गयो सायर छटो, सपतम वेणीदास ।
उही कीको आठमो, विय जग भयो वणाम ॥ ५८ ॥
नवमो खेतल नोहतो, उणरो वंस अवेर ।
नाराणज गढ़रे नखे, है यक गाम हरेर ॥ ५६ ॥

अर्थः—रत्नसिंह की मृत्यु के बाद उसका छोटा पुत्र सांईदास गद्दी पर बैठा। रत्नसिंह का तीसरा पुत्र खंगार और चौथा पुत्र कर्मसिंह, जो वंश को प्रकाशित करने वाला था, था।

(रतनसिंह का) पांचवा पुत्र वीरसिंह (वीरम) था, जिसका वंश वेगूं प्रान्त में पीपलोदा में है। उससे छोटा भाई सारल (शार्दूल सिंह अथवा सरदारसिंह) प्रसिद्ध वीर था।

(रतनसिंह का) छठा पुत्र सादल (शार्दूल) था, जो निःसंतान ही रहा, आठवां पुत्र 'कीका' था, जो युद्ध में तलवार द्वारा मारा गया।

नवां भाई नौहत्थे सिंह के समान था, जिसका वंश अभी नारायणगढ़ के पास हरेर (सरे) नामक एक गांव में है।

दसमो गोगोदो हतो, सुत जग गाम सरेह ।
कणजेड़ा तीरे अजे, प्रवणी भोज पुरेह ॥ ६० ॥
रतन पाट ईठो रघु, देखो मॉई दास ।
समत पनर वियासिये, भेसरोड़ चद्रमास ॥ ६१ ॥
मायो गांम बसावियो, दनकर सांईदास ।
उदल राण वंदापवो, भैसरोड़ चंद्रमास ॥ ६२ ॥
आद मुजब समपावियो, सरब सुरातय संज ।
झड़पड़ियो चत्रगढ जदन, अकबर मूं ओरंज ॥ ६३ ॥

खंगारदास की राजधानी भैंसरोड़गढ़ थी, जिसे महाराणा सब रीति-रिवाजों से प्रदान की। इस बात का जगत साक्षी है।

रावत खंगारदास के बीस पुत्र हुए। उनमें से १४ निःस मृत्यु को प्राप्त हुए और छः जीवित रहे।

बड़ाकुंवर किशनसिंह सोलंकियों का भानजा था, जिसके छोटेभाई रायसिंह, बाघसिंह, विसनसिंह निःसंतान मृत्यु को प्राप्त हु

छप्पय

पचम नरू पटेत,(जोरो), वंस लख राजट तीरे ।
ऊखट दास भुवान, स्यांड कुंडेई सही रे ॥
सपतम गोइंददास, पाय बेगूं रवताई ।
सूरज दीपो सोह, खेम भीमो चत्र माई ॥
ऊत गो भ्रात बारहुतणो, कान बारमो वंस कह ।
सामलह खेड़ तीरे सही, पालथ खेड़ी गाम पह ॥ ६६

रघू भुवांन तेरमो, वीर भाखे नज ईसर ।
अनुज छहुँ ऊतगा, खांन फोजो करसीधर ॥
दसनव सांवलदास, वंस सालुवर तीरे ।
खेड़ो गाम कहाय, स्याम परताप सहीरे ॥
ऊत गो वीर बसत अनुज, राव खंगारज दासरे ।
पाटवी कँवर कमनेस पह, कामय ज्वर प्रकासरे ॥७०॥

अर्थः—खंगार का पांचवां पुत्र नाहरसिंह सिंह के समान था। इस का वंश लखराज ट स्थान पर है। छठा भवानीदास था, जिसके अधिकार में सिहाड़ और कुंडेई की जागीरें थीं। सातवां गोविंददास

था, जिसने चेगूं जागीरी के साथ २ रावत पद प्राप्त किया। सूरजसिंह, दीपसिंह, खेमसिंह और भीमसिंह ये चारों भ्राता निःसंतान रहे। कानसिंह बारहवां भाई था, जिसने सामलखेड़ी के पास पालनखेड़ी गांव पर शासन किया।

(खंगार का) तेरहवां पुत्र भवानीसिंह और उससे छोटे वीरभानु, ईश्वरसिंह, मानसिंह, फोजसिंह एवं केरसिंह (केशरीसिंह) थे, जो छहों निःसंतान रहे। उन्नीसवां पुत्र सांवलदास था, जिसका वंश सलुंबर के समीप ग्राम खेड़े में है। इस समय यहां का ठाकुर प्रतापसिंह है। बीसवां पुत्र वीरसिंह भी निःसंतान रहा। खंगार का सबसे बड़ा कुंवर-किशनदास कश्यप-पुत्र सूर्य के समान तेजस्वी था

गडपत दास खंगार, धरम मूरत तपधारी।
अल् राखी अखियात, स्याम बंदगी सुधारी॥
(पछे), रावगियो परलोक, वेठ विव्राण विचाल्।
वाह वाह आखियो, सरस हिंदवाण सगाले॥
कसनेस पास रेठो तिकण, समत सोल् गुणतीस रे।
वंदाई व्रजड़ पातल दियो, सदा सुजय वगतीस रे॥७१॥

पोह राण परताप, विजड़ रावत् पदाई।
पटो सलुंबर सेव, पटेके ठाहर पाई॥
ऊपज्र सहस असीह, रेख सावत करवाई।
सींग सलूंबरों मोर, आप पाछे अपणाई॥
मन्न छपन मांग मेवास मुख, सरब उथप दानेस रे।
रवतेस राज्र थाप्यो रघू, संमत सोल् छचीस रे॥७२॥

अर्थः—धर्ममूर्ति तथा तपस्वी गढपति संगारदास ने पृथ्वी पर प्रसिद्धि प्राप्त की और स्वामी सेवा अच्छी तरह कर, विमान पर चढ़ कर स्वर्गारोहण किया (संसार से विदा होते समय ऱ्गार को) सभी सहृदय हिंदुओं से वाह-वाह मिली। बाद में सं० १६२६ में गद्दी पर किशनदास बैठा, जिसे राणा प्रताप ने सत्रु की भांति सब कुछ (मान प्रतिष्ठा) प्रदान कर तलवार बँधाई।

राणा प्रताप ने रावत (किशनदास) को तलवार बँधाई, साथ ही सलुंबर पट्टे के सहित अन्यान्य स्थान भी दिये रावत ने (इस प्रकार) अस्सी हजार की आय निश्चित करवाई और सलुंबर से सींगा (जो वहां का शासक था) को हटाकर अपना शासन जमाया। ५६ प्रदेश के बीच जंगली भील-डाकुओं को परास्त कर तथा 'दानेसरे'-शाखा के राठौड़ों को हटाकर सं० १६३६ में (रावतने) अपने राज्य की स्थापना की।

विकट भोमका वास, मनख मारका गमेती।
पहर सेल पारका, सुजड़ वारका सजेती॥
करण काज पारका, मरण धारका तमासी।
सीत घाम सारका अद्र धाइका रैवासी॥
हारका गुंज भूकण थियां, धूणी सर कर धारका।
मारका मीच ग्रहियां भुजां, कोट जके अहङ्कार का॥७३॥

अर्थः—रावत की निवास-भूमि (सलुंबर-प्रांत) बड़ी भयावह है। वहां रहने वाले भील मनुष्यों को मारने वाले, भाले के वार झेल-कर तलवार चलाने वाले, दूसरे के काम को पूरा करने में मृत्यु को खेल समझने वाले गर्मी और सर्दी को समान समझने वाले ऊंचे २ पर्वतों पर रहने वाले, गुंजा-हार से अलंकृत-स्त्रियों वाले, हाथों में तीर-कमान रखने वाले, मृत्यु-भार को अपनी भुजाओं पर ढोने वाले और गर्व (अहंकार) की दृढ़ दीवार के समान हैं।

छप्पय

बाण जिका वकराल, अंग अहनाण अनोखा ।
खाण तिका जन खेद, सुरा अप्रमाण मि सोखा ॥
मसत अनम अप्रमांण, वहत रखमांण वरोवर ।
राण तणों फुरमाण, सिर न धारता सरोवर ॥
लग्या पाल खागां अनँत, मालक हौकम मनावियो ।
केया घर पधर रावत कसन, अवनी सुजस रहावियो ॥ ७४ ॥

संजे सेन पतसाह, अठी मानो खड़ आयो ।
घर अठी सांमहो, चढ़े परताप चलायो ॥
हलदीघाटी मोर, मचक वागी रणमालां ।
वण वरियां रवतेस, खेत पड़िया खग ख्यालां ॥
उद भड़यो पांच चेटक तणों, सिंधुर सूँडस डोलका ।
पाखाप्र राण पलटत पखत, वही सिस वहलोलखां ॥ ७५ ॥

अर्थः—जिनके बाल भयंकर हैं, शरीर पर आश्चर्य जनक शस्त्राघात के चिन्ह हैं। मनुष्यों को मार कर खाने का जो दुःखपूर्ण काम करते हैं, जो दुखपूर्ण काम करते हैं, जो मस्त, किसी के आगे नहीं झुकते हैं, सूर्य-रश्मियों की भाँति सर्वत्र (घने जंगल एवं गुफाओं में) घूमने वाले हैं और जो राणा की आज्ञा को नहीं मानते हैं, उन पालों (जंगली-स्थानों के असंख्य मीणों (भीलों) को तलवार से पराजित कर रावत किशनसिंह ने स्वामी का आदेश मनवाया। इस प्रकार (मीणों को) रास्ते पर लाकर उस रावत ने पृथ्वी पर अपनायश फैलाया।

जब एक ओर से बादशाह (अकबर) की सेना सजाकर बहादुर मानसिंह आया और दूसरी ओर से राणा प्रताप ने सजकर सामना किया, तब हल्दी घाटी के मुहाने पर (दोनों की) टक्कर हुई और युद्ध-क्षेत्र में भालों की खबखबाहट सुनाई देने लगी। उस युद्ध में वीर रावत तलवारों से खेलता हुआ काम आया। उस समय चेटक ने अपना पाँव हाथी की सूंड पर अड़ाकर उसे डांवाडोल कर दिया था और राणा प्रताप ने लौटते समय अपनी तलवार का प्रहार बहलोलखां के सिर पर किया था।

वण साके रवतेस, कांम आयौ नृप कारण।
रोक अणी असुरांण, बेला अखियात उबारण॥
पाड़ हजारां पांच, मुदे पड़ियो धर माथे।
बाम कियो सिव लोक, तीरथ धारा व्रत पाते॥
स्याम रे कांम कीदो सु' बप, स्यामध्रमो व्रद साजियां।
पतसाह चमू हरवल परां, भ्रा (ट) अनेवां भांजियां॥ ७६॥

कँवर दस' कलनेस, ऊत च्यार गा कहावे।
जेत मझो भाणेज, सदन खीच्यांह सुहावे॥
अनुज रूप बेण री, बस ईरवा बरोबर।
जथा खेड़ली जूड़ ग्रहँ गामांज सरोवर॥
तीसरो ऊत कीरत गयो, सुतन राम सांगोद है।
पंचमो ऊत चद्रभांण यह, सायदे सांचोट है॥ ७७॥

अर्थ: - रावत मुसलमानों की सेना रोकते हुए महाराणा के अर्थ मरकर अमर होगया। वह पांच हजार दुश्मनों का संहार कर स्वयं धराशायी हुआ और धारा-तीर्थ में मृत्यु को प्राप्त कर शिवलोक चला गया। अपना श्रेष्ठ शरीर राणा की सेवा में अर्पित-करते हुए उसने स्वामिभक्ति और विरुद की रक्षा की। बादशाह की सेना, जो हरावल-भाग में थी, पर बड़े वेग से तलवार का तिरछा वार करते हुए उस (सेना) का उसने अंत कर दिया।

कहा जाता है कि, किशनसिंह के दस कुंवर थे। चार, संतान रहित ही रहे। ज्येष्ठ पुत्र जैतसिंह खींचियों का भानजा था। जैतसिंह का छोटा भाई रूपसिंह था, जिसका वंश ईरवास खेड़ली और जूड़ तीनों गांवों में है। तीसरा पुत्र कीर्तिसिंह भी निःसंतान ही रहा। चौथा पुत्र रामसिंह रहा, जिसकी संतान सांगोर में है। पांचवा पुत्र चन्द्रभानु था, जिसके सच्चे वीर होने की सब कोई साक्षी देता है, वह भी संतति-हीन रहा।

लाड खांन कुल छठो, गांम बीन्या सुत गावें।
स्याम अने मुगदास, ऊन दूहूं गा कहावें॥
जैमल नवमो जाण, हरा बन्ड़ उग्र होता।
दसमो वीठलदास, पुणे सोलंज पड़पोता॥
लूण दो अने थाणो ऊमे, सानुज लगु मोलंगरा।
मण रीत हुवा दसही कँवर, गडपत कसन अगंज रा॥७८॥

रावत कसन जैतसी, उग्रवाला पर धायो।
पातल राग पधार, रीत मजबून दरायो।

रूक बंबोरे आंण, त्रिये हामीर बदाई ।
समत सोल् नवतीस, बेठ जेतो विरदाई ॥
(अते) ऊंठाला पटक थाणो मडग, असुर अमल जमावियो ।
(उठे) रांण मुख पाय हरवल रघू, सगतो बलू सधावियो ॥७६॥

अर्थः—(किशनसिंह का) छठा पुत्र लाड़खां था, जिसकी संतान बीलया गांव में है। सातवां और आठवां पुत्र श्यामदास एवं मुण (मोहन) दास थे। ये भी संतति हीन ही रहे। नवें पुत्र जयमल की संतान बरड़ेय गांव में है। दसवां पुत्र विट्ठलदास था, जिसके वंशज सोलंज गांव में रहते हैं। लूणदा (स्थान) और थाणा (स्थान विशेष) वाले दोनों ही विट्ठलदास-वंश सोलंज के भाइयों में से हैं। अजेय गढ़पति किशनसिंह के ऐसे दस पुत्र थे।

भाग्यशाली जेतसिंह किशनसिंह की गद्दी पर बैठा। वि० सं० १६३६ में राणा प्रताप बंबोरे स्थान पर गये और नियमानुसार सब उपहार देकर तलवार बंधाई। यशस्वी जेतसिंह के गद्दी नशीन होने के कुछ समय बाद ही जब ऊंठाला स्थान पर यवनों ने अपना अडिग थाना (चौकी) स्थापित कर अधिकार जमाया, तब महाराणा का आदेश पाकर शक्तावत बलू हरावल का नेता होकर ऊंठाला की ओर बढ़ा

पड़ी जांण तण पहर, कुरब हरवल कहजावे ।
वडा खाटियो विरद, जेत ऊभां किम जावे ॥
असंड़ो वचन ऊचार, रघु रणजीत घुरायो ।
तदमे मडां तोखार, सलह पाखरां मझायो ॥

केसूया अरुण साजत किया, अहँगा अमल लगाविया।
पंच रतन पाठ पुनि दांन पड, करमर तोल धकाविया ॥ ८० ॥

जैत वलू अग्रजाय, तोड़ थाणी पतसाही।
गत रियो रण खेत, फेर हिंदु माण दुहाई ॥
जाती हरवल् जिका, गत राखी वल रूका।
अरथ स्याम आवतां, चाल कुल् वट नह चूका ॥
जमवामुजि का रहियो जगत, अंजस सावंद आणियो।
पुणियो सूर मंडल-पतँग, विहूं लोकां वाखाणियो ॥ ८१ ॥

अर्थः—जब रावत जैतसिंह को पता चला कि, चूंडा से लेकर हरावल-नेतृत्व की प्रतिष्ठा, जो महाराणा की ओर से मिली थी, अब (शक्तावतों के) हाथों में दी जा रही है, तब उस (रावत) ने कहा— यह प्रतिष्ठा मेरे रहते नहीं जासकती। बाद में रणवाद्य बजवाकर अपने साथी वीरों सहित बख्तर पहने, घोड़ों पर पाखरें डालीं एव केसरिया-कसूमल वस्त्र धारण किये। गहरा अफीम का नशा किया। बाद में पंच रत्न (स्तोत्र) पाठ पर बहुतसा दान पुण्य किया और तलवार उठा कर (ऊंठाले की ओर) प्रस्थान किया।

अर्थः—जैतसिंह ने बजू को ललकार कर शाही थाणे को स्वयं ने तोड़ दिया और हिंदू-पति राणा की वहां दुहाई फेरता हुआ युद्ध भूमि में काम आया। हरावल-नेतृत्व की प्रतिष्ठा जो समाप्त हुई जा रही थी, रावत ने तलवार के बल उसकी रक्षा की, राणा के सेवार्थ प्राण देने वाले (अपने) वंश की रीति में कोई त्रुटि नहीं आने दी। संसार में उसका यश बना रहा। स्वामी को भी उसके ऐसे कार्यों से गौरवअनुभव हुआ। वह सूर्य रूपी वीर सूर्य-लोक को पहुँच गया, जिसकी प्रशंसा तीनों लोकों में हुई।

छप्पय

जेत सुतन जग जांण, वहम मांनो विरदाई ।
वियो भ्रात वीरमों, रटे नह वंम रहाई ॥
संभर गर मोसाल, उग्र तपस्या कर आयो ।
जको पाट जेतरे, श्रवाद नाजिद सात्रायो ॥
अठ दूण समत छीयोतरे, राव गीयो सुरलोक में ।
मानण पाट बैठो मुदे, त्याग खाग भ्रद तोक में ॥८२॥
राण सलूंबर आंण, दुजड़ अमरेस बंदाई ।
मुग्तव मुजबक दीन्ह, सरब साश्रत वगसाई ॥
सेन लेर पतसाह, गिरद रहवास घेराई ।
जण दन रसोड़ा मात, ठोड़ ठोड़ हू छुटाई ॥
पतसाह सेन हुंता प्रथम, (उठे), जड़ लग झाट वजाड़वी ।
(जद) मानेण काम आयो मुदे, प्रसण गजां घड़ पाड़वी ॥८३॥

अर्थः—जैतसिंह के पुत्रों को ससार जानता है, जिनमें बड़ा पुत्र मानसिंह विशेष विरुदों वाला है। इसका छोटा भाई वीरम देव हुआ, जिसकी आगे वंश-वृद्धि न हुई। मानसिंह का ननिहाल चौहानों के यहां था तथा जो पूर्व जन्म में तपस्वी था सं० १६७६ में अष्टमी के दिन रावत जेतसिंह के स्वर्ग चले जाने पर उच्चैःश्रवा (अश्वविशेष) का वहन करने वाले इन्द्र से भी बढ़कर मानसिंह दान तथा तलवार के विरुद् का भार अपने पर लेकर गद्दी पर बैठा।

राणा अमरसिंह (प्रथम), सलुंबर आकर मानसिंह को उदय-ले गये और तलवार बँधाकर सदा की भांति प्रतिष्ठा प्रदान की। नियमानुसार और भी सब कुछ दिया। जब बादशाह की सेना ने पर्वतों के

बैठ रहने का (राणा का) स्थान घेर लिया और जगह २ पर इस बार तैयार हुए भोजन को छोड़ना पड़ा, तब सर्व प्रथम रावत कर्णसिंह ने शाही सेना पर सवेग तलवार चलाई और शत्रु–सेना तथा हाथियों को गिराते हुए स्वयं (युद्ध में) काम आया।

मान नंद त्रण मुदे, पीथ जगनाथ सगोमण ।
जे निहु गिया विसाय, खीण तपस्या जिण होवण ॥
रात पाट रघुनाथ, आण बैठो अवतारी ।
समत सतरा माझ, वरस तेरो उण वारी ॥
जे (जग) सिंघ राण जस दन दुजड़, आवे सदन वधायणी ।
दुगत्र सदा माफक सिया, नीती धरम नभायवी ॥ ८४ ॥
रात कियो रुग नाथ, वरस ग्यारेह बराबर ।
तेण कंवर रतनेस, जको दुनियांण उजागर ॥
तीन सुता हुई तेण,(पछे)आप परलोक सधायो ।
रुगा पाट रतनेस, उगलाला घर आयो ॥
जेधन् गणगाजड़ अजड़, कमरं रतन कसायवी ।
सदा मजबून आवे सदन, समसां मयां करायवी ॥ ८५ ॥

मान सिंह के तीन पुत्र शिरोमणि पुत्र हुए, जिनमें से पृथ्वी-सिंह एवं जगन्नाथ अपनी तपस्या क्षीण होने पर (अंतिम समय आने पर) समाप्त हो गये। बाद में रावत की गद्दीपर अवतारी पुरुष रघुनाथ सिंह वि० सं० १६८७ में आसीन हुआ। (इस अवसर पर) महाराणा जगत सिंह स्वयं सलुम्बर गये और रघुनाथ सिंह को उदयपुर लाकर तलवार बँधाई एवं सदा की भांति प्रतिष्ठा दे कर न्याय धर्म पालन किया।

रघुनाथ सिंह से (एक पुत्र) रत्न सिंह उत्पन्न हुआ, जो जग-प्रसिद्ध था, तीन पुत्रियां भी हुई। वि० सं० १७११ तक रघुनाथ सिंह ने राज्य किया। बादमें गद्दी का अधिकारी भाग्यशाली रत्न सिंह हुआ (और रघुनाथ सिंह राज सेवा में लग गया)। हमेशा की तरह राज सिंह ने (रघुनाथ सिंह के मर जाने पर) रतन सिंह को तलवार बंधाई और नियमानुसार घर (सलुम्बर) आकर सभी रीति-रस्मों को कृपापूर्वक पूरा किया।

तणो रतन बखतेस, सांत वेगो जण माके।
गाम नाम मुगेड़, रतन पांड़यो धर दाखे॥
स्याम करण सरकार, प्रबंद उग्रदन उपायो।
लावे मोलज हूंत, आण कांदल बैठायो॥
साल नव तीस सतरे समत, वरस पछे यांदी बीजड़।
पदारे भवन जेसिंघ नृप, मिया कुरब कीदो सुभड़॥८६॥

(अते), करत राण री कांम, राव दुव लयो बराबर।
कांदल तणे जिकाह, रदय मावी नह जाहर॥
तद चोड़े बतलाय, पाल सर थूर, पराने।
गीहा बिहुं रण खेत, रुधर खींचेर धराने॥
राव कर राज ग्यारा बरस, सुरपुर पाट सदावियो।
धन ही धन कांथल सुभड़, कन कन जगत कहावियो॥८७॥

अर्थः—रतनसिंह का पुत्र बखतसिंह था, जो युद्ध में मारा गया कहा जाता है कि, रतनसिंह भी मूंगेर गांव के युद्ध में काम आया (ऐसी दशा में) शासन का प्रबंध करने वाले महाराणा ने शुभ-दिन देख कर सोलंज ठिकाने से कांदल को लाकर वि० सं० १७३६ में रावत

(रतनसिंह) गद्दी पर बिठाया। एक वर्ष बाद राणा जयसिंह ने रावत के घर आकर (कांदल को) तलवार बँधाई एवं रीति के अनुसार सब कुछ दिया।

जब पारसोली वालों के पूर्वज केशरीसिंह ने, राणा जयसिंह की सेवा करने वाले कांदल की समानता करली, तब कांदल को यह अच्छा नहीं लगा। (परिणाम स्वरूप) दोनों थूर की तलाब की पाल पर आपस में एक दूसरे को ललकारते हुए पृथ्वी को खून से सींचकर मृत्यु को प्राप्त होगये। इस प्रकार कांदल ने ग्यारह वर्ष तक राज्य कर स्वर्ग से ऊपर (सूर्यमंडल) प्रस्थान किया। संसार में प्रत्येक के कान में वीर कांदल के धन्य २ की ध्वनि गूंज उठी।

कांदल तणे कुमार, व्हिया ऊभे उग्रकारी ।
कँवर वडो केहरी, अनुज सांमत अवतारी ॥
(जीं), पटे वचोरो पाय, पायन्यारी रव ताई ।
करी आप ग्वाटमां, प्रभत सारे जुग पाई ॥
वंशोगे पटा सहतो वले, राण मया कर रावने ।
सिद समत आने सतरा वचे, बांधो राज पचावने ॥ ८८ ॥

वरस पचासा वीच, क्रांत धारी सुत केहर ।
पायो कांदल पाट, दाह प्रमणां उर देहर ॥
गियो दिली गहलोत, रीयो पारा ग्रस रावत ।
अनुज माह ओरंग, तखत मेछांतद सावत ॥
जण अगा साज कमरत गुजर, पोहो ववरेल पजावियो ।
थण रीत साज कुलवट अनँत, जवना पती री भावियो ॥ ८६ ॥

कहा जाता है कि कांदल के दो प्रतापी पुः सिंह तथा छोटा सामन्त सिंह था, जो अवतारी माना सिंह ने वि० सं० १७४५ में वंबोरे का पट्टा प्राप्तक पदवी प्राप्त की। उसने अपने ही बल जागीर प्राप्त क पाई। इस उपरांत उस पर राणा की कृपा भी (विशे

वि० स० १७५० में कांदल का पुत्र कांतिमान जो शत्रुओं के वक्षस्थल को जलाने वाला था, ने कांद प्राप्त किया। यह शिशोदिया रावत दिल्ली में जाकर जब वहां बादशाह ओरंगजेब का भाई-मुगलों के त था, तब इस (रावत) ने बयगुत्थ होकर (कुश्ती रे दबोच दिया था, जिस से उसके कुल-मर्यादा की शोभा बादशाह भी प्रसन्न हुआ।

गीज साह ओरंग, एतो रावत दर
महल त्रपोल्यां मंड, हुकम आसेर हुव
पुर मांडल् बदनोर, पटा तीनह तद पा
दुजो पटो मँदमोर, एक गण गोरह ल
गणगोर आप राखी घरां. अवर केहरी आंग
खावद चरण भेटत समै, नजर किया सह रांण
तण दन वार प्रताप, हुंतो जे सिंघ महा
पाय तदन पर गणा, आप आयो नृप आग
एतां आद दे ओर, काज केही उग्र की
अदंक कियो आचार, दाह प्रसणां उर दी

मेंगालो वरस राजस कियो, पछे रात्र-मृत पावियो ।
उरारे गणां चगी-यला, खाय जोत- समावियो ॥ ६१ ॥

औरंगजेब ने प्रसन्न होकर बादशाह से रावत कोग ४ के महलों में बिजोलिया बनाने की आज्ञा दिलाई। साथ ही पुर, मांडल, बदनोर और मन्दसौर का पट्टा (जागीर सनँद) दिलाया। केशरीसिंह को एक 'गणगौर' (काष्ट-निर्मित प्रतिमा विशेष) भी मिली थी केवल जिसे अपने घर में रख कर और सब कुछ, अपने स्वामी के चरणों को छूते समय अर्पित कर दिया।

उस समय (जब) महाबली राणा जय सिंह का प्रताप फैला हुआ था, तब जागीरियों के पट्टे प्राप्तकर रावत (केशरी सिंह) राणा के संमुख आया। उसने (पट्टे आदि) संपूर्ण रुपसे दे कर और भी बड़े २ कार्य पूरे किये। वह अपने गुणों को प्रकट करता रहा एवं दुश्मनों के हृदय को जलाता रहा। इस प्रकार (रावत केशरी सिंह) पवित्र (मेवाड़) भूमिकी रक्षा कर ४१ वर्ष राज्य करने के पश्चात मृत्यु को प्राप्त हुआ एवं अखंड प्रकाश में लीन हो गया।

नरपत केहर नंद, कँवर च्यारू अंकधारी ।
कहजे वडो कुवेर, भ्रात लालो मतभारी ॥
तीजो गोड़ तिकोह, अनुज पारथ अहनाण ।
उरजण गोड़ कुवेर, तिको मोमाल् चुहाणां ॥
मोसाल् लाल हंदो मुदे, ज्यो कमदां घर वांण जे ।
विगत अणनाम छोटम वडम, चवड़े तिका पछाणजे ॥६२॥
जटन गांण जगतेस, दुवो सूरज दग्मायो ।
रघूलाल रोड़ रे, विहुंमां थाण वंदायो ॥

पटा मुरातब पाय, पाय न्यारी रवताई ।
भैंमरोड़ ऐकभ्रात, ऐक साटोलो पाई ॥
अठ दूण ऐक समत अछे, आलम वरस अठांणवे ।
वैसाख पोस सुद पख बिया, बांधो राज वखाणवे ॥६३॥

अर्थः—रावत केशरीसिंह के चारों पुत्र बड़े भाग्यशाली थे सबसे बड़ा कुबेरसिंह तथा उसका भाई लालसिंह बड़ा बुद्धिमान था रोड़सिंह एवं उसका छोटाभाई अर्जुनसिंह अर्जुन के समान था अर्जुनसिंहः रोड़सिंह एवं कुबेरसिंह का ननिहाल चौहानों के यहां थ और लालसिंह का राठौड़ों के यहां । उक्तक्रम से पढ़ने पर इन भाइयं का छोटे बड़े का ज्ञान होजाता है ।

जब रांणा जगतसिंह (दूसरे) सूर्य के समान प्रकाशित हुए तब उन्होंने लालसिंह और रोड़सिंह—दोनों के लिये—अलग २ स्था (जागीर) की व्यवस्था करदी । दोनों को पट्टे, प्रतिष्ठा एवं राव पदवी अलग २ देकर सुशोभित किये । सवत् १७९८ के वैशाख तथ पौष के शुक्लपक्ष में लालसिंह को भैंमरोड़ गढ तथा रोड़सिंह के साटोला जागीर मिली ।

उरजण चोथे आप, तिकण पाई रवताई ।
पटो महम पच्चास, मया पातल करवाई ॥
राज दुरग-मगरांम, वाख कुरावड पायो ।
तदन राय परताप, सरब सूरातब सायो ॥
ताजीम पटो रावत पणो, दुमहा गुंमर दाटमा ।
समत नव दूण दमीये वरस, कीदी उरजण खाटमां ॥ ६४ ॥

केहर पाट कुबेर, सीह दूजो दरसायो ।
संमत सतरे मांझ, साल सत्यावण छायो ॥
तदन रांण जगतेस, आण आ थाण उजागर ।
सुरतर आद सुजब्ब, रूक बदाय बराबर ॥
करमया रांण सारो कुंवर, उण दन साल अठाणवे ।
आसोज सुदी पचम अने, वारंवार बखाणवे ॥ ६५ ॥

अर्थः—(केसरी सिंह का) चौथा पुत्र अर्जुन सिंह, जिसे रावत पदवी प्राप्त हुई तथा महाराणा प्रताप सिंह (द्वितीय) ने कृपापूर्वक पचास हजार आय वाला कुरावड़ का पट्टा एवं युद्ध के योग्य दुर्ग दिया । उसने विरोधियों के दर्प को चूर्ण करने के लिये, महाराणा से सभी प्रकार की प्रतिष्ठा के साथ २ 'ताजीम', पट्टा एवं रावत पदवी प्राप्तकी । रावत अर्जुन सिंह संवत १८१० में कुरावड़ स्थान पर स्थापित हुआ ।

सं० १७६७ में केशरी सिंह की गद्दी पर कुबेर सिंह दूसरे सिंह के समान दिखाई देने लगा । उसदिन राणा जगत सिंह ने (कुबेर सिंह को) सलुम्बर से उदयपुर लाकर वि० सं० १६६८ आश्विन शुक्ला पंचमी के दिन नियमानुसार प्रतिष्ठा प्रदान की एवं तलवार बँधाई ।

कवर छह कुबेर, भाग धारी जग मांके ।
अनुज सिंह ऊनगा, रागत चालो जण साके ॥
वडो जेत जण बीच, जोद दूजो जग जाहर ।
मालो तीजो भीम, अनप वखतेस उजागर ॥

टिप्पणी:- दरबार में खड़े होकर महाराणा को सम्मान देने की क्रियाविशेष ।

अभमाल छटो जहार अवस, पायो चावंड पर पटे ।
मोसाल चहू भ्राता मुदे, राठोडां मुरधर रटे ॥ ६६ ॥

अभा पाट अणवार, अवस जोल्यां जद आणे । .
साटो ले सरदार, वडम आ थाण वैठाणे ॥
मुदे धणी भीमेण, राव इलकाब दराई ।
साल तदन गुण साठ, समत नवदूण सुहाई ॥
चावण्ड धरा पाती अभे, राव पणो सरदार सी ।
पीढियां दहु खाटम करी, रटे खलक जुग सारसी ॥ ६७ ॥

अर्थ:—कुवेरसिंह के छः भाग्यशाली पुत्र उत्पन्न हुए। उनमें से देवी प्रकाप (महामारी आदि) के फैलने से दो पुत्र निःसंतान चल बसे। कुवेरसिंह का बड़ा पुत्र जैतसिंह था। युद्ध विख्यात वीर जोधसिंह दूसरा एवं तीसरा भीमसिंह था। अनूपसिंह तथा वखतसिंह प्रशंसनीय थे। छठा अभयसिंह था, जो संसार प्रसिद्ध एवं जिसने चावण्ड का पट्टा पाया था। इन चारों भाइयों का ननिहाल मारवाड़ के राठाड़ों के यहां कहा जाता है।

उस समय साटोला के सरदारसिंह को दत्तक-रूप में लाकर महत्वपूर्ण अभयसिंह की गद्दीपर आसीन किया। वि० सं० १८६५ में महाराणा भीमसिंह ने रावत पदवी प्रदान की। अभयसिंह को चावण्ड का ठिकाना प्राप्त हुआ और सरदारसिंह को रावत पदवी। इस प्रकार दोनों ने मिलकर जागीर स्थापित की। ऐसा प्रसिद्ध है।

आया समँत अठार, वरस पांचो वरतायो ।
(5) केहर नंद कुवेर, सको परलोक सधायो ॥

तिरण पाट जेतसी, दुरस सरकार अदारे ।
तदन राण जगतेस, पोहो आयाण पदारे ॥
बंधाई खाग मुरतब मया, रीति मुजब करावियो ।
अस्टमी सुद सावन अखे, साल छकी दरसावियो ॥ ६८ ॥

बरस पांच बर वीर, जेत कीदो हद राजस, ।
(अते) आपो फौज उठाण, किद घेरो घन काजस ॥
घेर्यो पुर नागोर, सलख अर्राव सजाई ।
तठे राव जेतसी, बोदे बाणास बजाई ॥
थावियो कांम कांदल विधी, बाज खगां रज रजवियो ।
वैमाण वीच वैठे वड्म, गऊ लोक रावत गियो ॥ ६६ ॥

अर्थः—सं० १८०४ में केशरीसिंह का पुत्र कुबेरसिंह मृत्यु को प्राप्त हुआ। उसकी गद्दी पर जेतसिंह (द्वितीय) राजसी ठाट बाट के साथ बैठा, उस समय राणा जगतसिंह सलुंबर आये और नियमानुसार वि० सं० १८०६ श्रावण शुक्ला अष्टमी के दिन कृपापूर्वक तलवार बँधाकर प्रतिष्ठा प्रदान की।

अधिक से अधिक पांच वर्ष तक श्रेष्ठवीर जेतसिंह ने राज्य किया। तभी आपाजी मराठा ने धन प्राप्त करने के उद्देश्य से सेना सजाई एवं मेवाड़ पर घेरा डालकर पुर तथा नागोर को घेर लिया। यह देख कर रावत जेतसिंह एवं वीरों ने तोपें एवं अरबी घोड़े सजवाकर तलवारें चलाईं। वीर जेतसिंह उस युद्ध में तलवार चलाते हुए कांदल के समान टुकड़े २ होकर वीरगति को प्राप्त हुआ और विमान में बैठकर स्वर्ग-लोक को चला गया।

(यह सुअवसर देखकर) वहीं (उदयपुर में ही) मेवाड़-रक्षक महाराणा द्वारा तलवार बँधवा दी गई। दस वर्ष तक जोधसिंह ने राज्य किया, तदनंतर वि० सं० १८२१ में पहाड़सिंह ने उस स्थान को सुशोभित किया और सदा की भांति पृथ्वी पर दान करता रहा।

जब मेवाड़ में कृत्रिम राणा रत्नसिंह के कारण उत्पात की आंधी छा रही थी और नासमझ पटेल (माहद "माधा") ने उसका पक्ष लेकर सेना को अच्छी तरह सजाई और उदयपुर की ओर चल पड़ा, तब महाराणा ने सुनकर अपनी सेना भी तैयार की, जिसके मुखिया पहाड़सिंह (सलुंबर) एवं उम्मेदसिंह (शाहपुरा) थे, आगे बढ़े। उज्जैन पहुँचकर सफरा (क्षिप्रा) नदी के किनारे सैन्य समूह को रोककर विजय प्राप्त की। रावत पहाड़सिंह उसी युद्ध में काम आये (स्वर्गवासी हुए)। उन्होंने कुल पांच वर्ष तक शासन किया।

नँद पहाड़ नहँ हुवो, राव पड़्यो सफरातट।
आय खबर उदियांण, भीम हाजर हतो भट ॥
कहतो काको भीम, (जीको), पाट पाहड़रे आयो।
सार तिका अड़सीह, मिया मुरतब्ब करायो ॥
उदियांण इते आवे अदक, लूंबी फोज पटेल री।
काडवी भीम रावत जिका, मेटी गलां तुफेल री ॥१०४॥

सांध्यां आण सतात्र, मेट तोफांन महाबल।
जालम जालो काउ, जदन खावंद भीमाजल ॥
मांडल सांगानेर, जाजपर हीत पत्ताड़े।
गिया तीन परगणां, मुदे आण रावत मांडे ॥

वेढियो दपट जालो वध्र, अकण कनां सुं जोर दे ।
छ्टावे मुलक कीदो गरां, राण अमल कीदो मुदे ॥१०५॥

अर्थः— पहाड़सिंह के कोई पुत्र नहीं हुआ और वह रावत मस्रा (क्षिप्रा) नदी के तट पर स्वर्गवासी हो गया। जब यह समाचार उदयपुर आया, तब वीर भीमसिंह प्रस्तुत था, जो पहाड़सिंह का काका कहा जाता था। वही पहाड़सिंह की गद्दी पर आसीन हुआ। राणा अरिसिंह ने नियमानुसार सम्मानपूर्वक उसे तलवार बँधाई। इधर पटेल (माहद्) कि सेना आकर उदयपुर पर फिर छागई, तब रावत भीम सिंह ने उस उत्पाती को भगा कर उसकी (कु) ख्याति को नष्ट करदी।

अत्यधिक बलशाली रावत भीमसिंह ने, सिंधी सिपाहियों को साथ ले उस तूफान को नष्ट कर दिया और विपक्षियों द्वारा दबाये गये मांडल, मांगानेर, जहाजपुर तथा झाला (जालमसिंह) द्वारा अधिकृत किये गये अन्य मेवाड़ी भू-भाग, सब के सब बलपूर्वक छीन कर महाराणा के अधिकार में दे दिये।

.... ।
राव भीम रे नंद हुवा तीनहुं जुग जाहर ॥
तीजो मेरू सिंघ. विहुं भाणेज वडम्ली ।
पायो मेरू सिंघ. भूप भुज आर भड़लली ॥
रायपुर पटो कारोई निज, गजमदेसर माकवूं ।
लाखगो रजक रावत पणो, अती खाटम आखवूं ॥१०६॥
पसी गामरे वीच, मायजादे दल साज्यों ।
(अठी), रावत मेरूसींघ, आय खगतोल अग्राज्यो ॥

मारहलो मेव्हांण, राव पड़ियो धर ऊपर।
साल सदन गुणसाठ, मास आसोज महापर॥
आवियो कांम भैरव असां, गुणी जणां जस गावियो।
आज दन तलक मडल अणी, अमरज नाम रहावियो॥१०७॥

अर्थः..................रावत भीमसिंह के उपरोक्त तीन पुत्र जगत प्रसिद्ध थे। उनमें से (दूसरा) तथा तीसरा भैरवसिंह दोनों वड़ली (अजमेरा) के भांनजे थे। वीर मेरूसिंह ने योद्धाओं के युद्ध-भार को अपनी भुजाओं पर उठाया। उसे रायपुर, कारोई तथा भदेसर का पट्टा (प्रान्त) जागीर में मिला, जिसकी आय एक लाख की थी, साथ ही रावत-पद भी मिला। इस प्रकार वह नई जागीर प्राप्त करने वाला कहा गया।

जब बसी (सलुंबर का एक गांव) पर शाहजादा चढ़ आया, तब रावत भेरूसिंह हाथ में तलवार उठाकर आगे बढ़ आया और म्लेच्छों को मारता हुआ (युद्ध में ही) मारा गया। उस दिन वि० सं० १८२६ आश्विन माह (नवरात्रि) का महापर्व था। रावत भेरूसिंह के मारे जाने पर उसका यशोगान (कई) गुणवानों ने किया। आज भी इस मेवाड़ देश में उसका नाम अमर है।

भालो वमथीमेण, बरस तेंतीस बराबर।
रावत कीदो राज, पछे पड़ियो धर ऊपर॥
कियो वास कयलास, स्याम उग्र काज सुधारे।
भीमा पाट भुवांन, दुरस पुन्‍वंत पधारे॥
भीमेण आण माभ्रत मवन, तण दन साल सतात्रने।
हंदाई व्रजड़ सुरतव दियो, रीत मुजब निज रावने॥१०८॥

भालो नंद भुवांन, व्हिया चहुवे सुण आगर ।

चूंड रतन अमरेस, उही पदमेस अथाहर ॥

अमर चूंड हुय सांत, रतन पदमेस रहायो ।

भ्रात बिदू भाणेज, सदन भालां दरसायो ॥

त्रणवास राज भुवानो तप्पो, साठे सुरग सहा वियो ।

रतनेस पाट बैठो रघू, ऊदे कास जणावियो ॥१०६॥

अर्थः— रावत भीमसिंह ने बराबर तैंतीस वर्ष तक राज्य करके शिव-लोक में निवास किया। इस बीच उसने महाराणा के कई बड़े २ कार्य किये। भीमसिंह के बाद गद्दी पर पुण्यात्मा भवानीसिंह बैठा। (रावत भीमसिंह की मृत्यु होने पर) महाराणा भीमसिंह स्वयं सलुंबर गये और वहां से लौटते समय (भवानीसिंह को) साथ में लाकर उदयपुर में वि० सं० १८५७ में तलवार बँधाई और प्रतिष्ठा देकर नियमानुसार सम्मानित किया।

भवानीसिंह के चुंडा, रतनसिंह, अमरसिंह एवं पद्मसिंह—चार पुत्र हुए, जो सभी गुणों के 'आगार थे'। अमरसिंह तथा चुंडा मृत्यु को प्राप्त हुए तथा रतनसिंह (तृतीय) और पद्मसिंह जीवित रहे। ये दोनों भाई झाला के भानजे थे। तीन वर्ष तक भवानीसिंह ने राज्य किया। सं० १८६० में उसके (भवानीसिंह के) मरजाने पर रतनसिंह सिंहासन पर बैठा, जो उदीयमान सूर्य की भांति आलोकित हो उठा।

छप्पय

नखत भुवान रतनेस, उग्र बेठो कह आलम ।

मरा वरस सरचेत, चाल राजम ब्रड चालम ॥

पूगो उर भ्रम धांम, पाट पदमेस दपीजे ।
साल तदन गुणसाठ, मास भ्रगताल सुखीजे ॥
भ्रण बरस बाद भीमेंण नृप, सदन पधारे चोसटे ।
राण ने आण उदिया नयर, सार वदावण रे सटे* ॥११०॥

अर्थः—इस बात को सारा संसार कहता है कि, भवानीसिंह के सिंहासन पर रत्नसिंह बैठा. जिसने सवा बरस तक अपने पूर्वजों की रीति नोति से (अच्छी तरह) राज्य-संचालन किया उसके स्वर्गारोही हो जाने पर मार्गशीर्ष वि० सं० १८५६ के दिन उसस्थान को पद्मसिंह ने देदीप्यमान किया । तीन वर्ष के बाद (वि० सं० १८६४) में राणा भीमसिंह सलुंबर आये, जिन्हें तलवार बँधाने हेतु उदयपुर लाया गया ।

सार हेम साजरी, तास सरपाव तुरंगम ।
मोवन कलस सुनाम, कनक भूखण कह जंगम ॥
अलि बगस गज एक, पूंच सर सांघ जड़ाऊ ।
श्रवणा भूखण सार, माल मोतियां लड़ाऊ ॥

टिप्पणीः—

* यह उस जमाने की पद्धति थी कि, सामंत के निधन अथवा अन्य किसी कारण से सामंत-पद के रिक्त होजाने पर जब उस सामंत के उत्तराधिकारी को वह पद दिया जाता था, तब सर्व प्रथम उदयपुर महाराणा के समक्ष उपस्थित होना पड़ता था । महाराणा, उसे सामंतोचित सब सम्मान देते थे और प्रमाण स्वरूप तलवार बँधवा दी जाती थी जिससे वह सामंतों की गिनती में आजाता था और अपने पैतृक मान, धन एवं राज्य का अधिकारी माना जाने लगता था ।

उठे राण सारूप, अठे केहर अजरायल।
राण घरियोंने मेल, वधी दहुं गाज बरायल ॥
विण कारण तरवार, दुरस नहराव बँदाई।
राज कियो बतेस बरस पनरा जबराई ॥
जीवयों जते खेयां जबर, मेदपाट घर मामला।
(अते), उगणीसं साल चूंडा अरख, वसियों सुरंपुर सांमला ॥११३॥

दोहा

कँवर हुवो नह केर रे, सुता गुलाब सुजांण।
स्याम करण सरकार मल, जद सोचे राण-जांण ॥११४॥
बाई कँवर गुलाब रो, रहे सुजस दहुं राह।
मास चेत विद मांयने, छह तथ जनम उछाह ॥११५॥

अर्थः—एक (ओर उदयपुर में) राणा स्वरूप सिंह तथा दूसरी ओर (सलुंबर में) विजयी रावत केशरीसिंह थे। दोनों में मित्रता न रहने से वैमनस्य बढ़ता रहा साथ ही बोल चाल (छेड़छाड़) होती रही। इससे स्पष्ट है कि, राणा ने रावत को तलवार नहीं बँधाई। रावत केशरीसिंह पन्द्रह वर्ष तक जबरदस्त राज्य करता रहा और जब तक जीवित रहा, तब तक मेवाड़ के महत्वपूर्ण कार्य बनाते रहा। वि०सं० १६१६ तक चुंडावत केशरीसिंह एवं हिन्दू सूर्य (महाराणा स्वरूपसिंह) राज्य करते रहे और बाद में दोनों ने एक साथ ही स्वर्गारोहण किया।

दोहा

सच्चरित्र पुत्री गुलाब कुंवर के अतिरिक्त केशरीसिंह के और कोई पुत्र नहीं हुआ। तब अमात्य आदि (सलुंबर के प्रमुख व्यक्ति) मिलकर सोचने लगे कि, स्वामी किसे बनाया जाय?

गुलाब कुंवर का जन्म चैत्र कृष्ण पक्ष की षष्ठी के दिन हुआ, जिसका हिन्दू और मुस्लिम दोनों जातियां यशोगान करती हैं। जन्म के दिन सबों में बड़ा हर्ष छागया।

तूं तनिया केहर तणी, निज पख चाढ़ण नीर।
सहस गुणो दरसावियो, (थारो), सुदालम सभीर ॥११६॥

छप्पय

सात कोस आंतरे, वास आथाण बंबोरो।
सामंत हरो सुजांण, जोद तप भाग सजोरो ॥
उग्र भाग आ थाण, भाग सरकार भलो ही।
पुनि एतो बलधाय, मेल सर वेत मल्योही ॥
केहरी पाट बैठो तहां, जोदसिंघ केहर जसो।
उगणीस साल सावण सुदी, तीज सुक्र रवि कुल तसो ॥११७॥

अर्थः—हे गुलाबकुंवर। तू केशरीसिंह की पुत्री है अपने पक्ष-वालों (पूर्वजों) की कांति (गौरव) को बढ़ाने वाली है। बड़राई लिये हजारों गुणा अधिक स्वामित्व तूने प्रकट किया है।

(सलुंबर से) पश्चिम की ओर सात कोस की दूरी पर बंबोरा नामक स्थान है, जहां के स्वामी सामंतसिंह का पौत्र (वंशज) जोधसिंह बड़ा पराक्रमी एवं भाग्यशाली है। सलुंबर का एवं यहां की प्रजा तथा राज्य-संबंधित लोगों का भी सौभाग्य है जो, सब विशिष्ट ग्रहों के योग से श्रावण शुक्ला तृतीया शुक्रवार वि० सं १९१९ के दिन केशरीसिंह के आसन पर केशरीसिंह के समान ही वीरसिंह-तुल्य जोधसिंह बैठा।

—:रावत केशरीसिंह: सलुम्बर:—

का

—: विस्तृत वर्णन :—

निसाणी

समरूं गणपत नाथ कूं, देवुद्ध सगाला।
समरूं तोने सारदा, हिय उकत बहाला॥
सुजस करूं रवतेस का, कुल का उजवाला।
पाट मवान पदमेस नृप, थाना मद वाला॥११८॥
किता हजारा रीजकर, ग्रब सूमां गाला।
वड़े भाग वाला-विलंद* रजवाट रुखाला॥
पांण भोज दद्धीच जम, गुण कावि गणाला।
रामचन्द्र वन गमन ज्यूं परियां कथ पाला॥११९॥

अर्थ:—हे गणपति! मैं आपका स्मरण करता हूँ। मुझे सुबुद्धि प्रदान करो। साथ ही सरस्वती का भी स्मरण करता हूँ, वह मुझे सूक्तियां (कहने की) शक्ति दे। जिससे कि मैं पद्मसिंह तथा भवानीसिंह के वंश-विरुद को सुस्थिर रखने वाले सिंहासनासीन रावत-पद धारी (केशरीसिंह) का यशोवर्णन कर सकूं।

जिसने असंख्य मुद्रायें दान में देकर कृपणों के गर्व का उन्मूलन किया है। जो बड़ा भाग्यशाली है। राज-रक्षक है। कवि कोविद इस के विषय में कहते हैं कि, इसके हाथ, भोज एवं दधीचि के समान उदारता लिये हुए हैं और जो रामचन्द्र के वन-गमन की तरह पूर्वजों के आदेश पालन में तत्पर है।

---

* विशेष भाग्यशाली।

सांच कथन जुजठल समो, दुनियाण दिठाला ।
बुध का गणपत सारखा, मुख पात मुणाला ॥
काछ सु दृढ़ गंगेव सा, हिन्दू ध्रम पाला ।
ग्यानी गोरख सारखा, बापो विरदाला ॥१२०॥
ध्यानी गंगधारी, समो, वँस क्रीत बढ़ाला ।
जँग बागा पारथ जसा, भंजण खल जाला ॥
मेदपाट ग्रद जण भुजां, सागे दरमाला ।
जेण कूख केहर जनम, बड़ नखत्रां वाला ॥१२१॥

अर्थः—युधिष्ठिर के समान जिसकी सत्यवादिता संसार-प्रसिद्ध है। बुद्धिमें जो गणपति के समान है जिसकी प्रशंसा कवि-वाणी किया करती है। जो भाष्म-सा जितेन्द्रिय होकर हिंदू धर्म का पालन करने वाला एवं-गुरु गोरख-सा ज्ञानी तथा बापा के समान कीर्तिशाली है।

इस उपरांत जो शंकर के समान ध्यानी एवं वंश यश को बढ़ाने वाला है। और युद्ध में अर्जुन की तरह दुष्टों का दलन करने वाला है। जिसकी भुजाओं पर मेवाड़ के विरुद सचमुच सुशोभित होते हैं, ऐसे पद्मसिंह के यहां बड़े नक्षत्रों वाला केशरीसिंह ने जन्म लिया।

हरख घरँ नर सांम किव, हिँदवाणी वाला ।
धड़क अमाप उर धारवे, असुराणी वाला ॥
सुत केहर पदमेस के, धन भाग कुढ़ाला ।
का सब रे सूरज कँवर, जिणरीत जगाला ॥१२२॥
रामचन्द्र दसरत्थ रे, पोढमी पगटाला ।
(कना) दूजो भागीरथ प्रगट, वँस काज बडाला ॥

दत देवे बल दूसरा, परिया नृप पाला।
काटण पर दुख कारणे, विक्रम सम भाला ॥१२३॥

अर्थः—(रावत केशरीसिंह के) पैदा होने से हिंदुस्तान के राजा, कवि एवं लोग अत्यधिक प्रसन्न हुए और मुसलमानों के हृदय धड़कने लगे। पद्मसिंह के घर जन्म लेने वाला वीर केशरीसिंह, मानों कश्यप-पुत्र सूर्य-सा दिखाई दिया; जो बड़ाही भाग्यशाली था।

(केशरीसिंह का जन्म), दशरथ-पुत्र राम का फिर से पृथ्वी पर आने-सा लगा अथवा अपने वंश के उद्धार-कार्य को पूरा करने दूसरे भगीरथ ने जन्म लिया हो, ऐसा समझा जाने लगा। (दान-वीरता से) राजा बलिके दूसरे अवतार-सा मालूम होता था। यह पूर्वजों की प्रतिष्ठा का पालन करने वाला एवं दूसरों का दुःख दूर करने में राजा विक्रम-सा जान पड़ता है।

सरणांया साधार ब्रद, यां बरदां पाला।
सतधारी हरचन्द सा, कुल आभ चढ़ाला॥
पालण खटद्रन पातवां, कुल ब्रच्छ सगाला।
सीमाड़ी ग्रहो सकिश्रा पेखे घड़ चाला ॥१२४॥

अर्थः—(केशरीसिंह) अपने 'शरणागत-आधार' वंश विरुद का पालन करने वाला, सत्यवादी हरिश्चन्द्र की तरह अपने वंश को प्रोज्वल बनाने वाला और कल्पवृक्ष के समान कवियों एवं षड्दर्शन-वेत्ताओं का पोषक है। आस पास सीमा पर रहने वाले, इसके महान् कार्यों को देख कर बहुत भयभीत हो उठे हैं (आश्चर्य में डूब जाते हैं)।

—: रावत जोधसिंह सलुंबर :—

छप्पय

आज सरब हिंदवाण, मुकट मेवाड़ सुणीजै ।
मांझी मदां कुंवाड़, (जीरो) गुर्दा जस गान गुणीजै ॥
नगर सलुंबर नाथ, क्रांतवारी सुत केहर ।
जको पुण्यरी जाज लग्नं छाकां जस लेहर ॥
खट वरन पाल पालग सरण, ओटम नवलां आसरो ।
परताप वधयो राखे प्रभु, जोद गरीब निवाजरो ॥१२४॥

अर्थ:—आज मेवाड़ सारे भारत का मुकुट कहाता है और उसमें जो केशरीसिंह की कांति धारण करने वाला सलुंबर का स्वामी रावत जोधसिंह है, वह वीर भूमि मेवाड़ के लिये दृढ़ कपाट-तुल्य है (बिना उसके तोड़े कोई दुश्मन मेवाड़ में प्रवेश नहीं पा सकता)। (वास्तव में) सब लोग इस (जोधसिंह) का यशोगान करते रहते हैं। यह (साक्षात्) पुण्य का जहाज है। बड़े उल्लास के साथ यश मदिरा का पान करता है। (साथही) षट्दर्शन की रक्षा करने वाला एवं निबलों का आसरा भी है। कवि कहता है कि, ईश्वर, ऐसे गरीबों का पालन करने वाले जोधसिंह का प्रताप बनाये रखे।

... ... (
जोद गरीब नवाज, दांन पानां नत देवे ॥
जोद गरीब नवाज, आज सोहे अड़ पावत ।
जोद गरीब नवाज, सरब आयण सुख सापत ॥
गरीब निवाज जाहर जगत, करण निरापख काज रो ।
परतार वधत राखे प्रभु, जोद गरीबनवाज रो ॥१२६॥

दत देवे वल दूसरा, परिया नृप पाला।
कारण पर दुख कोरखे, विक्रम रांम माला ॥१२३॥

अर्थः—(रावत केशरीसिंह के) पैदा होने से हिंदुस्तान के राजा, कवि एवं लोग अत्यधिक प्रसन्न हुए और मुसलमानों के हृदय धड़कने लगे। पद्मसिंह के घर जन्म लेने वाला वीर केशरीसिंह, मानों कश्यप-पुत्र सूर्य-सा दिखाई दिया; जो बड़ाही भाग्यशाली था।

(केशरीसिंह का जन्म), दशरथ-पुत्र राम का फिर से पृथ्वी पर आने-सा लगा अथवा अपने वंश के उद्धार-कार्य को पूरा करने दूसरे भगीरथ ने जन्म लिया हो, ऐसा समझा जाने लगा। (दान-वीरता से) राजा वलिके दूसरे अवतार-सा मालूम होता था। यह पूर्वजों की प्रतिष्ठा का पालन करने वाला एवं दूसरों का दुःख दूर करने में राजा विक्रम-सा जान पड़ता है।

सरणांया साधार अद, यां बरदां पाला।
सतधारी हरचन्द सा, कुल आम चढ़ाला ॥
पालण खटभ्रन पातवां, कुल अच्छ सगाला।
सीमाड़ी यहो संकिबा पेखे वड चाला ॥१२४॥

अर्थः—(केशरीसिंह) अपने 'शरणागत-आधार' वंश विरुद का पालन करने वाला, सत्यवादी हरिश्चन्द्र की तरह अपने वंश को प्रोज्वल बनाने वाला और कल्पवृक्ष के समान कवियों एवं षड्दर्शन-वेत्ताओं का पोषक है। आस पास सीमा पर रहने वाले, इसके महान् कार्यों को देख कर बहुत भयभीत हो उठे हैं (आश्चर्य में डूब जाते हैं)।

यो जोधो अण वार, ढाल मेवाड़ धरा रो ।
माठा गालण मांण, रीज करणाल सरारो ॥
समत्रड़ियां सरताज, सहज दीयाल सम्यालो ।,
हाथां–हेल–हमी, पंड अदतार प्रजालो ॥
आचार सार बाना उभे, लियां वहे भुजलाजनै ।
हरि चरंजीव राखे इमे, (ईं), जोद गरीब ने वाजनै ॥१२७॥

अर्थः— .... । गरीबों का पालन करने वाला रावत जोधसिंह कवियों को हमेशा दान देने वाला, शत्रुओं से अड़ने वाला एवं सब गुणों का जानकार तथा उन्हें समझने वाला । । यह संसार प्रसिद्ध (रावत) किसी भी कार्य को निष्पक्ष होकर करता है। कवि कहता है कि, ईश्वर इस वीर का प्रताप बढाता रहे।

रावत जोधसिंह, इस समय मेवाड़ भूमि की ढाल, कर्ण के समान दानी, मन्द (अभिमानी, मूढ़) लोगों का मान–मर्दन करने वाला, सामंतों का मुकुट, दीनों पर सहज ही दयालु, हेला हमीर (दानी विशेष) के समान हाथों वाला, कृपणों के शरीर में दाह उत्पन्न करने वाला और सदाचार एवं शास्त्र–भार की लज्जा को भुजाओंपर धारण करने वाला है (सदाचारिता एवं शास्त्र का अस्तित्व इसी के बल पर निर्भर है) । भगवान इसे चिरायु रखे ।

कुल अधकी कसनाण, जको आलम सह आणे ।
वहे अधक वाणाख, वरन जस बास बखाणे ॥
रीज अधक करणार, दीयां हुतां अण पारां ।
सांसण अण सरपाव, फील गमराज अपारां ॥

ऐहड़ी उग्र वातां उमे, करता ऊंच कीय काज रो ।
परताप वचन राखे प्रभु, जोद गरीब नवाज रो ॥१२८॥

सुत केहर सुभियाण, वरन पालग अण वेला,
हातां–हेल–हमीर, खलां करवाल उखेला,
हाती बगमग्ग हार, गाम भूखण द्रव गेमर,
पटा कुरब मरजाद, मिहर पंथी नग हेमर,
जस वास तणो गाहक जबर, अवलंब नवला आजरो ।
परताप वचन राखे प्रभु, जोद गरीब नवाज रो ॥१२६॥

अर्थः—विश्वविख्यात यह (जोरावरसिंह, चूंडा के वंश में) किसना-वत शाखा में उत्पन्न हुआ है। तलवार चलाने में यशस्वी यह (रावत) बड़ा ही कुशल माना गया है। यह विशेष दान–दाता है। प्रसन्नचित्त होकर यह संख्यातीत गांव, घोड़े, वेशभूषा, हाथी एवं अच्छे २ ऊंट दान में देता है। प्रभुने इसे वीरता एवं दानशीलता दोनों में समर्थ बनाया है। कवि कहता है कि भगवान, गरीबों की सुध लेने वाले इस जोरावरसिंह के ऐश्वर्य को बढ़ाता रहे।

केसरीसिंह का श्रेष्ठ पुत्र, इस समय चारों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र) वर्णों का पालन करने वाला है। इस सूर्य स्वरूपी वीर के हाथ, दान देने में हेला हमीर के समान एवं दुश्मनों को मूल से उखाड़ फेंकने वाले हैं। यह (रावत) हमेशा कृपा पूर्व का हाथी, घोड़े गांव, भूषण, द्रव्य, पट्टा (सनद) प्रतिष्ठा, वेशभूषा और नग (रत्न) आदि वस्तुएं देने वाला है। कवियों के गुण का यह बहुत बड़ा ग्राहक है। गरीबों के ऐसे रक्षक निर्बलों का आसरा तो परमात्मा आज यही है। गरीबों के ऐसे रक्षक जोरावरसिंह के प्रताप को ईश्वर बढ़ाता रहे।

यो जोधो अण वार, ढाल मेवाड़ धरा री ।
माठा गालण मांण, रीज करणाल सरारो ॥
समवड़ियां सरताज, सहज दीयाल सगालो ।
हार्ता-हेल-हमी, पंड अदतार प्रजालो ॥
आचार सार वाना उभे, लियां वहे भुजलाजने ।
हरि चरंजीव राखे हमे, (ई), जोद गरीब ने वाजने ॥१२७॥

अर्थः— ……………… । गरीबों का पालन करने वाला रावत जोधसिंह कवियों को हमेशा दान देने वाला, शत्रुओं से अड़ने वाला एवं सब गुणों का जानकार तथा उन्हें समझने वाला है । यह संसार प्रसिद्ध (रावत) किसी भी कार्य को निष्पक्ष होकर करता है। कवि कहता है कि, ईश्वर इस वीर का प्रताप बढाता रहे ।

रावत जोधसिंह, इस समय मेवाड़ भूमि की ढाल, कर्ण के समान दानी, मन्द (अभिमानी, मूढ) लोगों का मान-मर्दन करने वाला, सामंतों का मुकुट, दीनों पर सहज ही दयालु, हेला हमीर (दानी विशेष) के समान हाथों वाला, कृपणों के शरीर में दाह उत्पन्न करने वाला और सदाचार एवं शस्त्र-भार की लज्जा को भुजाओंपर धारण करने वाला है (सदाचारिता एवं शस्त्र का अस्तित्व इसी के बल पर निर्भर है) । भगवान इसे चिरायु रखे ।

कुल अधको कसनाण, जको आलम सह आणे ।
वहे अधक वाणाख, बरन जस वास वखाणे ॥
रीज अधक करणार, दीयां हुतां अण पारां ।
सांसण अण सरपाव, फील गगराज अपारां ॥

ऐहड़ी उग्र वातां उभे, क्रवा ऊंच कीय काज रो ।
परताप वधत राखे प्रभू, जोद गरीब नवाज रो ॥१२८॥
सुत केहर सुमियाण, वरन पालग अण वेला,
हातां–हेल–हमीर, खलां करणाल उखेला,
हाती वगसग हार, गाम भूखण द्रव गेमर,
पटा कुरब सरधाव, मिहर पंथी नग हेमर,
जस वास तणो गाहक जबर, अवलंब नवला आजरो ।
परताप वधत राखे प्रभु, जोद गरीब नवाज रो ॥१२९॥

अर्थ:—विश्वविख्यात यह (जोधसिंह, चूंडा के वंश में) किमनावत शाखा में उत्पन्न हुआ है। तलवार चलाने में यशस्वी यह (रावत) बड़ा ही कुशल माना गया है। यह विशेष दान–दाता है। प्रसन्नचित्त होकर यह संख्यातीत गांव, घोड़े, वेशभूषा, हाथी एवं अच्छे २ ऊंट दान में देता है। प्रभुने इसे वीरता एव दानशीलता दोनों में समर्थ बनाया है। कवि कहता है कि भगवान, गरीबों की सुध लेने वाले इस जोधसिंह के ऐश्वर्य को बढ़ाता रहे।

केशरीसिंह का श्रेष्ठ पुत्र, इस समय चारों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र) वर्णों का पालन करने वाला है। इस सूर्य स्वरूपी वीर के हाथ, दान देने में हेला हमीर के समान एवं दुश्मनों को मूल से उखाड़ फेंकने वाले हैं। यह (रावत) हमेशा कृपा पूर्व का हाथी, घोड़े गांव, भूषण, द्रव्य, पट्टा (सनद) प्रतिष्ठा, वेशभूषा और नग (रत्न) आदि वस्तुएं देने वाला है। कवियों के गुण का यह बहुत बड़ा ग्राहक है। निर्बलों का आसरा तो एकमात्र आज यही है। गरीबों के ऐसे रक्षक जोधसिंह के प्रताप को ईश्वर बढ़ाता रहे।

मुरधर कछ मेवाड़ (वले) देस ढूंढाड़ दमीरा ।
समवड़ प्रजा सपाह, वले नर केक वसीरा ॥
धरती आ सतवार, चूंड गरबट लख चीला ।
अंजस धरे अपार, अनड़ भोपाल अठीला ॥
सुधारे काम कारज सरब, सुपहां रखण समाज रो ।
परताप वधत राखे प्रभु, जोद गरीबनवाज रो ॥१३०॥

ईर वास उमराव, रूप सिंगोत सिरोमण ।
सुत पहाड़ कसनेस, जपे वाखाण जणो जण ॥
भ्रात जिका भालजे, नाथ सुरताण नहच्चल ।
नाहर अने गुमान, उभे सानुज्ज अवच्चल ॥
नमावण हेत माध अनँत बाना बंद बसेव रे ।
अचार सार गहियां उभै सुभड़ असार वतेसरे ॥१३१॥

अर्थः—मारवाड़, कच्छ, मेवाड़ तथा जयपुर-प्रदेश (ढूंढाड़) के सामंतों, प्रजाओं, राजाओं, अन्य स्थानों के निवासियों एवं मेवाड़ के स्वाभिमानी महाराणा ने, चुंडावत (जोधसिंह) की-घरेलू रीति-नीति जो (कलियुग में भी) सतयुग की सी थी, को देख कर गर्व का अनुभव किया (कि हमारे वंश में यह एक है)। (वास्तव में) गरीबों का रक्षक जोधसिंह सभी के कार्यों को सुधारने वाला एवं राज्य तथा समाज का रक्षण करने वाला है। ईश्वर इसके प्रताप की वृद्धि करता रहे।

ईसरवास (गांव) की रूपसिंहोत शाखा के मुखिया पहाड़सिंह का यशस्वी पुत्र किशनसिंह एवं युद्ध में विचलित न होने वाले किशन-सिंह के भाई नाथसिंह, सुरताणसिंह, नाहरसिंह, और गुमानसिंह सबके सब विशेष विरुदधारी हैं। ये सब मेरे (कवि के) प्रति अपार प्रेम रखते हैं एवं शस्त्र धारण करने वाले सदाचारी वीर रावत जोधसिंह की सेवा में रहने वाले हैं।